मधु-संचय

भाग 2

(कक्षा 10 'अ' के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक)

संपादक
स्नेह लता प्रसाद

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जनवरी 2003
पौष 1924

ISBN 81-7450-152-5

PD 400T DRH

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2003

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस श्री अरविंद मार्ग नई दिल्ली 110 016	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज बैंगलूर 560 085	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन अहमदाबाद 380 014	सी.डब्लू.सी. कैंपस 32, बी.टी. रोड, सुखचर 24 परगना 743 179

प्रकाशन सहयोग

संपादन : दयाराम हरितश
उत्पादन : डी. साईं प्रसाद
सुनील कुमार

आवरण
कल्याण बैनर्जी

रु.10.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा नवटैक कंप्यूटर द्वारा लेज़र टाईपसैट होकर अजय आर्फसेट प्रिंर्टस ए-55, नारायणा इंड़स्ट्रियल ऐरिया फेज- I, नारायणा, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में विद्यालयी स्तर पर विभिन्न शैक्षिक विषयों के लिए पाठ्यचर्या एवं तदनुरूप पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य लगभग चार दशकों से हो रहा है। इसी क्रम में राष्ट्रीय नीति (1986) के लागू होने पर तद्निहित सिद्धांतों, सुझावों और उद्देश्यों के अनुसार उपयुक्त शिक्षण-सामग्री एवं पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया, जिनमें बाल-केंद्रित शिक्षा एवं शिक्षार्थियों के सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया गया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में यह सुझाव भी दिया गया था कि कुछ समय के पश्चात ज्ञान-विज्ञान के विकास, सामाजिक रचना और नवीन दृष्टिकोण तथा मूल्यपूरक शैक्षिक आवश्यकताओं को देखते हुए पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में यथावश्यक संशोधन और परिवर्तन अवश्य किया जाए। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए 'विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (सन् 2000)' का निर्माण हुआ। तत्पश्चात नवीन पाठ्यचर्या में सुझाए गए नवीन उद्देश्यों, जीवन-मूल्यों, सूचना-संसाधनों एवं शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष की दृष्टि से अपेक्षित शैक्षिक बिंदुओं को समाहित करते हुए विविध विषयों का नवीन पाठ्यक्रम तैयार किया गया। तदनुसार नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य हाथ में लिया गया। इसी शृंखला में दसवीं कक्षा के हिंदी 'अ' पाठ्यक्रम के लिए पूरक पठन की इस पुस्तक **मधु-संचय भाग 2** का प्रणयन किया गया है।

इस पुस्तक के प्रणयन में जिन प्रमुख सिद्धांतों का विशेष ध्यान रखा गया है, वे इस प्रकार हैं –

1. पुस्तक में ऐसी पठन-सामग्री का समावेश किया गया है जो शिक्षार्थी में राष्ट्रीय लक्ष्यों तथा केंद्रिक पाठ्यक्रम में प्रतिपादित जीवन-मूल्यों, लोकतंत्र, धर्म-निरपेक्षता,

समाजवाद, सामाजिक-न्याय और राष्ट्रीय एकता के प्रति चेतना एवं आस्था विकसित कर सके।

2. पठन-सामग्री में भारतीय जनजीवन से संबंधित समस्याएँ, परिस्थितियाँ तथा राष्ट्र की सामासिक संस्कृति परिलक्षित हो।
3. पूरक पुस्तक मूलतः स्वाध्याय के द्वारा पठन-रुचि विकसित करने के लिए होती है। अतः प्रस्तुत पुस्तक के लिए ऐसी पाठ्य-सामग्री के निर्माण का प्रयास किया गया है जो अपनी रोचकता, बोधगम्यता एवं विविधता के कारण शिक्षार्थियों को स्व-अध्ययन के लिए तो प्रेरित करे ही, साथ ही उन्हें इस प्रकार की अन्य सामग्री पढ़ने के लिए भी उत्प्रेरित कर सके। इस प्रकार की सामग्री के अध्ययन से छात्रों में उत्तरोत्तर भाषिक एवं साहित्यिक योग्यताओं का विकास हो सकेगा।

प्रस्तुत पुस्तक द्वारा जहाँ एक ओर हिंदी के भारतीय सामासिक संस्कृति के संवाहिका रूप को उजागर करने की चेष्टा की गई है, वहीं दूसरी ओर साहित्य, समाज, कला, विज्ञान आदि क्षेत्रों में देश की गौरवमयी परंपरा और उसमें निहित जीवन-मूल्यों को रेखांकित करने का भी प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक शिक्षाविदों, भाषाशास्त्रियों एवं अध्यापकों का सहयोग मिला है। मैं उन सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

जिन लेखकों ने अपनी रचनाएँ इस पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित किए जाने की अनुमति दी है, उनके प्रति मैं विशेष रूप से अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक के परिष्कार के लिए शिक्षाविदों और अध्यापकों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रियाओं और सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

अक्तूबर, 2002
नई दिल्ली

भूमिका

कक्षा 10 हिंदी 'अ' पाठ्यक्रम के लिए प्रस्तुत पूरक पाठ्यपुस्तक के निर्माण में विद्यार्थियों की पूर्वार्जित भाषा योग्यता, बौद्धिक क्षमता एवं रुचि का ध्यान रखते हुए यह प्रयास किया गया है कि इसके माध्यम से वे विभिन्न साहित्यिक विधागत विशेषताओं से परिचित हों और उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी विकसित हो। यह भी प्रयत्न किया गया है कि जो साहित्यिक विधाएँ नवीं-दसवीं कक्षा की मुख्य पाठ्यपुस्तक एवं नवीं कक्षा की पूरक पठन की पुस्तक **मधु-संचय भाग 1** में सम्मिलित नहीं हो पाई हैं वे इस कक्षा दसवीं की पूरक पठन की पुस्तक **मधु-संचय भाग 2** में अवश्य आ जाएँ। इस दृष्टि से इस पुस्तक में कहानी और व्यंग्य के अतिरिक्त जीवनी (पत्र-शैली) तथा अनूदित रचना आदि को स्थान दिया गया है। इनके अध्ययन से अपेक्षा की जाती है कि विद्यार्थी इन विविध विधाओं की शैलीगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।

आज देश में संकीर्ण संप्रदायवाद और असहिष्णुता की प्रवृत्ति के कारण हम भारतीय जीवन-मूल्यों तथा अपनी समन्वयवादी सामासिक संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। समुचित साहित्य की शिक्षा इस प्रवृत्ति को दूर करने और विद्यार्थियों में राष्ट्र के प्रति स्वस्थ अभिरुचि विकसित करने में एक प्रेरक साधन बन सकती है। इस दृष्टि से पाठ्य-सामग्री के चयन और संयोजन में निम्नलिखित बिंदुओं को केंद्र में रखा गया है :

पठन-सामग्री ऐसी हो जिसके माध्यम से विद्यार्थी लोक-परंपरा, साहित्य, कला, विज्ञान, समाज आदि के क्षेत्र में अपनी सांस्कृतिक विरासत से परिचित हों और उसके प्रति उनमें सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो।

विधागत पाठ्य-सामग्री के चयन में रोचकता और विविधता का ध्यान रखा गया है।

पठन-सामग्री के बोधन की दिशा में अध्यापक एवं विद्यार्थियों को स्पष्ट दृष्टि देने के विचार से प्रत्येक पाठ के अंत में बोध-प्रश्न दिए गए हैं। आशा है कि इन प्रश्नों के माध्यम से न केवल विद्यार्थियों के बोधन का मूल्यांकन हो सकेगा, बल्कि पाठ में निहित विविध शैक्षणिक बिंदु भी उभरकर सामने आ सकेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में सम्मिलित रचनाओं की कतिपय विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

कोटर और कुटीर : सियारामशरण गुप्त द्वारा लिखित इस गद्य रचना में पक्षी एवं मानव दोनों के माध्यम से यह प्रतिपादित किया गया है कि संकट के समय भी अपनी आन और मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। वस्तुतः चरित्र की कसौटी कठिनाई की घड़ी ही होती है। जिस प्राणी ने कठिन समय संयम और धैर्यपूर्वक संघर्षरत रहते हुए निकाल लिया, वही वंदनीय है।

सुभाष चंद्र बोस का पत्र एन.सी. केलकर के नाम : सुभाष चंद्र बोस ने यह पत्र मांडले सेंट्रल जेल, म्याँमार (बर्मा) में अपने कारावास के समय लिखा था। उन्हें उसी कक्ष में रखा गया था जिसमें लोकमान्य तिलक को रखा गया था। इस पत्र में बड़े ही सशक्त एवं मार्मिक ढंग से माननीय तिलक के महान चरित्र, धैर्य, कष्ट-सहिष्णुता, असीम देश-प्रेम, अगाध विद्वता, गहन चिंतन और भारतीय दर्शन के मर्मज्ञ रूप का चित्रण किया गया है।

काश, मैं मोटर साइकिल होता : श्रीलाल शुक्ल ने इस व्यंग्य में अत्यंत रोचक ढंग से वर्तमान प्रशासनिक कार्यव्यवस्था पर प्रहार करते हुए आकस्मिक दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की स्थिति का वर्णन किया है।

ऋणशोध : ऋता शुक्ल की इस कहानी में जहाँ एक ओर मध्यवर्गीय परिवार की कठिनाइयों की मार्मिक व्यंजना हुई है, वहीं दूसरी ओर गुरु की महत्ता पर भी प्रकाश डाला गया है। विद्यादान

देनेवाले से अधिक शुभाकांक्षी और स्नेही कोई हो ही नहीं सकता। गुरु से आशीर्वाद लेने के लिए विकास अपने नवजात शिशु को उनकी पहनी हुई धोती में लपेटकर उनके चरणों मे रख देता है। गुरु के प्रति श्रद्धा का यह अनुपम उदाहरण है।

मुगलों ने सल्तनत बख्श दी : भगवती चरण वर्मा के इस व्यंग्य में अंग्रेज़ों द्वारा भारत पर धीरे-धीरे कब्ज़ा कर लेने की घटना को बड़े ही रोचक रूप में प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन मुगल साम्राज्य में व्याप्त राग-रंग और अकर्मण्यता पर करारी चोट की है।

समानांतर सरल रेखाएँ : यह कहानी विभूति पट्टनायक की उड़िया में लिखित कहानी का हिंदी अनुवाद है। इसमें लेखक ने दो पीढ़ियों के जीवन-मूल्यों के अंतर को बड़े ही सजीव रूप में चित्रित किया है। पुरानी पीढ़ी जो करती थी, उसके फल की कामना नहीं करती थी और आज की पीढ़ी पुरखों के किए हुए को ही भुनाना चाहती है। इस कहानी के माध्यम से 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' का संदेश प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है।

आशा है यह पुस्तक विद्यार्थियों को रुचिकर लगेगी और उनमें स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ाने के साथ-साथ विभिन्न जीवन-मूल्यों के प्रति समझ भी उत्पन्न कर सकेगी।

पाठ्यपुस्तक-निर्माण-समिति

1. डॉ. विद्यानिवास मिश्र
   पूर्वकुलपति, संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय
   वाराणसी तथा महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
   वाराणसी
2. श्री निरंजन कुमार सिंह
   अवकाशप्राप्त प्रवाचक, रा.शै.अ.प्र.प.,नई दिल्ली
3. डॉ. माणिक गोविंद चतुर्वेदी
   अवकाशप्राप्त प्रोफ़ेसर
   केंद्रीय हिंदी संस्थान,दिल्ली
4. डॉ. आनंद प्रकाश व्यास
   अवकाशप्राप्त प्रवाचक, केंद्रीय शिक्षा संस्थान
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
5. डॉ. मानसिंह वर्मा
   पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मेरठ कालेज
   मेरठ
6. डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी
   प्रोफ़ेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली
7. डॉ. अनिरुद्ध राय
   अवकाशप्राप्त प्रोफ़ेसर, रा.शै.अ.प्र.प.
   नई दिल्ली
8. डॉ. प्रभात कुमार
   प्रवाचक, हंसराज कालेज
   दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली
9. डॉ. रमेश दवे
   एल.आई.जी.-276
   कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल
10. डॉ. नीरा नारंग
    वरिष्ठ प्रवक्ता, केंद्रीय शिक्षा संस्थान
    दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली
11. डॉ. सुरेश पंत
    अवकाशप्राप्त प्रवक्ता
    रा.उ.मा. बाल विद्यालय,
    जनकपुरी, दिल्ली
12. श्री प्रभाकर द्विवेदी
    अवकाशप्राप्त मुख्य संपादक
    रा.शै.अ.प्र.प.,नई दिल्ली
13. डॉ. कमल सत्यार्थी
    अवकाशप्राप्त उपप्रधानाचार्य
    सरदार पटेल विद्यालय, दिल्ली
14. कु. कुसुम लता अग्रवाल
    टी.जी.टी., सर्वोदय बाल विद्यालय
    रमेश नगर, दिल्ली
15. श्री अमर गोस्वामी
    स्वतंत्र लेखक, बी.एफ. 5 शर्मा मार्किट
    अट्टा, सेक्टर 27, नोएडा
16. श्री अशोक शुक्ल
    टी.जी.टी., सर्वोदय सहशिक्षा विद्यालय
    एफ.यू. ब्लाक, पीतमपुरा, दिल्ली
17. मो. इमरान
    टी.जी.टी., एंग्लो-अरेबिक उ.मा.विद्यालय
    अजमेरी गेट, दिल्ली
18. श्री सत्यनारायण शर्मा
    पी.जी.टी., केंद्रीय विद्यालय,ए.जी.सी.आर.
    कालोनी, दिल्ली
19. डॉ. राम निवास
    प्रवक्ता, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
    रा.शै.अ.प्र.प., अजमेर
20. कु. इंद्रा सक्सेना
    पी.जी.टी., डी.एम. स्कूल, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान
    अजमेर

रा.शै.अ.प्र.प. संकाय

1. डॉ. सत्येंद्र वर्मा, *प्रोफ़ेसर*
2. डॉ. प्रमोद दुबे, *प्रवक्ता*
3. डॉ. (कु) स्नेह लता प्रसाद
   प्रवाचक **(समन्वयक)**

विषय-सूची

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

1 | कोटर और कुटीर

सियारामशरण गुप्त



कोटर

दोपहरी का समय था। सूर्य अग्नि-शलाकाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था। वृक्षों के पत्ते निस्पंद थे। मानो किसी और भयंकर कांड की आशंका से साँस-सी साधे खड़े हैं। इसी समय अपने छोटे-से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक-पुत्र ने कहा, "पिता !"

बाहर की सहज स्निग्ध वनस्थली की वर्तमान रूखेपन की तरह ही वह स्वर कुछ नीरस था। चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा, "क्या है बेटा?"

"है और क्या? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आ गए हैं।"

"बेटा, अधीर न हो। समय सदा एक-सा नहीं रहता।"

"तो यही तो मैं भी कहता हूँ – समय सदा एक-सा नहीं रहता। पुरानी बातें पुराने समय के लिए थीं। आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाए हुए हैं जिस तरह बानरी मरे बच्चे को चिपकाए रहती है। घनश्याम की बाट आप जोहते रहिए। अब मुझसे यह नहीं सध सकता।"

"घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते। यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।"

"आप कहते हैं, कोई अनर्थ नहीं हुआ, मैं कहता हूँ, प्यास की इस यंत्रणा से बढ़कर और अनर्थ क्या होगा? जहाँ से भी होगा, मैं जल ग्रहण करूँगा ही।"

चातक सिहरकर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने उन अश्रव्य वचनों और कानों के बीच में कोलाहल की परिखा-सी खड़ी कर देनी चाही। थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला, "बेटा धैर्य रख। अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरती माता की गोद हरी-भरी होती है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नहीं।"

लड़के ने कहा, " व्रत-पालन करते हुए इतने दिन तो हो गए, पानी का कहीं चिह्न तक नहीं है। गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गए। फिर सूर्य के और निकट रहने वाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है?"

"बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवनदान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिए थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।"

"पिताजी, मैं थोड़ी-सी क्षुधा से नहीं डरता। परंतु यह भी नहीं चाहता कि क्षुधा-ही-क्षुधा सहन करता रहूँ। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ। देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूँगा। घनश्याम को भी तो सोचना चाहिए था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिए नहर, तालाब और कुओं का बंदोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊँगी। हमीं क्यों इस तरह कष्ट सहें? आप चाहें रखें या छोड़ें, मैं यह झंझट न मानूँगा।"

चातक ने देखा मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा, "यह बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे?"

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था। वह सोचता था, जिस प्रकार लाखों जीव-जंतु जल पीते हैं उसी प्रकार मैं भी पिऊँगा। परंतु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा कमज़ोरी यहीं है। वह जानता था कि कमज़ोरी के ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढ़ी है। बोला, "चुप कैसे रह गए? बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे?"

हिचकिचा कर अपनी बात स्वयं ही खंड-खंड करते हुए लड़के ने कहा, "जहाँ से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वहीं से मैं भी करूँगा।"

पिता ने कहा – "पड़ोस में वह पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहाँ जल पीते हैं। तुम वहाँ जल पी सकोगे? बोलो, है हिम्मत?"

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आ गई। अह, उसमें कितनी गंदगी है ! सूखे पत्ते, डंठल आदि गिरकर उसमें सड़ते रहते हैं। कीड़े कुलबुलाते हुए उसमें साफ़ दिखाई दे सकते हैं। लोग उसमें कपड़े निखारने आते हैं या गंदे करने, कई बार सोचने पर भी वह समझ न सका था। एक बार एक आदमी को अँजुली से पानी पीते देख उसने पिता से कहा था, "देखो पिताजी, ये कैसे घृणित जीव हैं !" अवश्य ही उसने अपने व्रत का ज़िक्र उस समय नहीं किया था, परंतु उसके मन में उसी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मैं उस पोखरी का पानी पिऊँगा?

चातक बोला, "बेटा, अभी तुम नासमझ हो ! चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो, परंतु जब इसके लिए बाहर निकलोगे तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुझसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा?"

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा, "मैं गंगा-जल ग्रहण करूँगा।"

चातक ने कहा, "गंगाजी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर हैं। तू नहीं मानता तो जा। परंतु यदि तूने और कहीं एक बूँद भी ली, तो हमें मुँह न दिखाना !"

चातक-पुत्र प्रणाम करके फुर्र से उड़ गया।

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुककर घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के 'दत्तक' से पूरी किया चाहती थीं।

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए वह उसी पर उतरा।

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों में जीवन-यात्रा की इतनी ही मंज़िल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके मानो आधे-आधे शरीर का बँटवारा कर लिया। स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में 15-16 वर्ष का एक मात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रतिदिन संध्या-समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था, इसलिए बुद्धन उसके लिए छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आए थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाटा था और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट के नीचे उतरने तक की शक्ति नहीं थी, तो भी उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सवेरे थोड़े-से चने खाकर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी कुछ चने और पीने का पानी यथास्थान रख गया था। आज खाने के लिए घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था, शाम को मजूरी के पैसों का आटा लाकर रोटी बनाऊँगा। परंतु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल था। जो समय आनंद की स्निग्ध शीतल छाया में, शीतकाल के दिन की

तरह, मालूम भी नहीं होने पाता और निकल जाता है, वही दुख की दाहक ज्वाला में निदाघ के दीर्घ दिनों की भाँति अकाट्य हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी, परंतु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि बरसों का समय हो गया। बार-बार अपने कान खड़े करके रात के उस सन्नाटे में वह गोकुल के पद-शब्द सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसकी प्रतीक्षा सफल हुई। किवाड़ खुलने की आवाज़ सुनकर वह चौंका। वास्तव में यह गोकुल ही था। उसने कहा, "कौन गोकुल ! बेटा आज बड़ी देर लगाई।"

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास आकर रोने लगा।

बुद्धन ने घबड़ाकर पूछा, "क्या हुआ, बेटा क्या हुआ?"

"आज मजूरी नहीं मिली। अब कैसे चलेगा?"

"ऐं, मजूरी नहीं मिली। फिर इतनी देर क्यों हुई?"

प्रकृतिस्थ होकर गोकुल ने उसे अपना हाल सुनाया।

सवेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देखकर उसके पैर ढीले पड़ गए। सोचा – आज भगवान ही मालिक है। काम पर पहुँचकर उसने देखा – ओवरसियर साहब आज कुछ ज़्यादा खफ़ा हैं। इंजीनियर साहब काम देखने आए थे। जान पड़ता है, काम देखने की जगह वे ओवरसियर साहब को ही देख गए थे। अन्याय का यह बोझ उन्होंने दिन भर मज़दूरों पर अच्छी तरह उतारा। शाम को मज़दूरी देने के समय भी साफ़ इनकार कर दिया – आज दाम नहीं दिए जाएँगे। उस अदालत के फ़ैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती, ओवरसियर साहब का हुक्म मानकर मज़दूर अपने-अपने घर लौट गए।

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा हुआ दिखाई दिया। पास पहुँचने पर मालूम हुआ, रुपए-पैसे रखने का बटुआ है। उठाकर देखा तो काफ़ी वज़नदार था। वह सोच में पड़ गया – इसे खोल कर देखना चाहिए या नहीं। न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा। कौतूहल-निवृत्ति करने के लिए उसने उसे टटोला। टटोलने पर मालूम हुआ रुपए हैं और बहुत कम भी नहीं।

थोड़ी देर तक वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा। इसका क्या करूँ? उसके पिता ने उसे अब तक जो कुछ सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले। वह यही सोच रहा था कि यह बटुआ किसका है? जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ खो गया है तब उसकी क्या दशा होगी ! रुपए-पैसे का क्या मूल्य है, यह बात वह कुछ दिनों में ही अच्छी तरह जान गया था। उस व्यक्ति की उस समय की दशा का विचार करके वह इस प्रकार सिहर उठा, मानो उसी का बटुआ खो गया हो।

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी। उस पर कान में मोती-पिरोई सोने की बाली पहने हुए एक महतो बैठे थे। संभव है यह बटुआ उन्हीं का हो। और किसी के पास इतने रुपए होना आसान भी नहीं है। यहाँ कुएँ पर गाड़ी रोककर उन्होंने पानी पिया होगा और आग जला कर तमाखू भरी होगी। एक जगह आग जलाई जाने के चिह्न मौजूद थे। उसने इस बात पर विचार ही नहीं किया कि गाड़ी तक जाने में कितना समय लगेगा और वह दौड़ पड़ा।

लगभग आधे घंटे के परिश्रम से वह उस गाड़ी के पास पहुँच गया। गोकुल ने हाँफते-हाँफते पूछा, "महतो, तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया?"

महतो ने चौंककर गाड़ी में इधर-उधर देखा। साथ ही जेब पर हाथ रखा तो पाषाण की तरह निस्पंद हो गए। गोकुल से महतो की वह अवस्था देखी न गई। बटुआ दिखाकर उसने झट से प्रश्न कर दिया, "यह तुम्हारा है?"

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वंद्व-सा हो गया। मानो बिजली के खटके ने प्रकाश बुझाकर फिर से उद्दीप्त कर दिया हो। महतो ने कहा, "भगवान तुझे सुखी रखें भैया ! इसे कहाँ पाया?"

"रास्ते में पड़ा था। इसमें कितने रुपए हैं?"

महतो ने हिसाब लगाकर बताया, "बयालीस रुपए, एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेकाम दुअन्नी, दस या बारह आने पैसे, एक कागज़, एक चाँदी का छल्ला..."

गोकुल ने बटुआ खोल कर रुपए गिने। सब ठीक निकले। बटुआ हाथ में लेकर महतो की आँखों में आँसू भर आए। बोले, "इतनी बड़ी रकम पाकर भी जिसे

उसका लोभ न हो, भैया मैंने ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा। यदि किसी और को यह बटुआ मिलता तो मेरा मरण हो जाता। मेरा रोम-रोम असीस रहा है, भगवान तुम्हें सदा सुखी रखें....।" यह कहकर महतो ने बटुए से निकालकर गोकुल को दो रुपए देने चाहे। उसने सिर हिलाकर कहा, "मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिए मुझे मना कर दिया है। मुफ़्त के रुपए मैं न लूँगा।"

महतो के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गए। गोकुल थोड़ी ही देर में उस अंधकार में उनकी आँखों से ओझल हो गया।

सब वृत्तांत सुनकर गोकुल अपराधी की भाँति खड़ा-खड़ा बोला, "बप्पा, आज खाने के लिए कुछ नहीं है। महतो से कुछ उधार माँग लाता, तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।"

बुद्धन की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे। गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भरकर उसने छाती से लगा लिया। आनंदातिरेक ने उसका कंठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा वह दो-एक दिन की तो बात ही क्या जीवन भर की क्षुधा शांत कर सकती है। धन-संपत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगे। मानो एकाएक उसके सब दुख रोग दूर हो गए हैं। अब वह बिना किसी चिंता के मृत्यु का आलिंगन इसी क्षण कर सकता है।

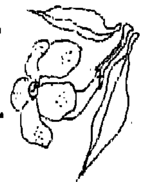
बड़ी देर में अपने को सँभालकर बुद्धन बोला, " अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपए उधार नहीं लाया। वह उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता। भगवान ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देखकर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया, यह तू मुझसे भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ, सदा ऐसी ही मति रखना। चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नीयत न डुलाना।"

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आँखों से भी झर-झर आँसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़े सवेरे वह फिर उड़ा। परंतु आज वह विपरीत दिशा को चला, उसी दिशा को, जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज़ हो गई थी। फिर भी अपने कोटर तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गए। दूसरे दिन से ही मेघों ने उठकर ऐसी झड़ी लगा दी कि बीच-बीच में कई जगह रुककर ही वह वहाँ तक पहुँच सका।

बोध-प्रश्न

1. चातक ने अपने तृषित पुत्र को किस व्रत की याद दिलाई?
2. "*जहाँ से भी होगा, मैं जल ग्रहण करूँगा ही*" – पुत्र *का यह कथन सुनकर चातक* सिहरकर पंख क्यों फड़फड़ाने लगा?
3. चातक-पुत्र ने अपने पिता के तर्कों को किस प्रकार काटा?
4. "हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुझसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा?" इन पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए।
5. गोकुल के समय से घर न लौटने पर बुद्धन का मन आशंकित क्यों था?
6. गोकुल के देर से घर लौटने का क्या कारण था?
7. भूखे बुद्धन को तृप्ति का अनुभव क्यों हुआ?
8. चातक-पुत्र अपने कोटर की ओर क्यों लौट चला?
9. यह कहानी दो कहानियों को मिलाकर लिखी गई है। ये दोनों कहानियाँ किस प्रकार एक दूसरे की पूरक हैं, स्पष्ट कीजिए।

2 सुभाष चंद्र बोस का पत्र एन.सी.केलकर के नाम



सुभाष चंद्र बोस

प्रिय श्री केलकर

मैं पिछले कुछ महीनों से आपको लिखने की सोचता रहा हूँ जिसका कारण केवल यह रहा है कि मैं आप तक ऐसी जानकारी पहुँचा दूँ जिसमें आपको दिलचस्पी होगी। मैं नहीं जानता कि आपको मालूम है या नहीं कि मैं यहाँ गत जनवरी से कारावास में हूँ। जब बरहमपुर जेल (बंगाल) से मुझे मांडले जेल के लिए स्थानांतरण का आदेश मिला था तब मुझे यह स्मरण नहीं आया था कि लोकमान्य तिलक ने अपने कारावास काल का अधिकांश भाग मांडले जेल में ही गुज़ारा था। यहाँ आने पर मुझे पता चला कि इस चहारदीवारी में, यहाँ के बहुत ही हतोत्साहित कर देने वाले परिवेश में स्वर्गीय लोकमान्य ने अपने सुप्रसिद्‌ध 'गीता रहस्य' ग्रंथ का प्रणयन किया था जिसने मेरी नम्र राय में उन्हें शंकर और रामानुज जैसे प्रकांड भाष्यकारों की श्रेणी में स्थापित कर दिया है।

जिस वार्ड में लोकमान्य रहते थे, वह आज तक सुरक्षित है, यद्‌यपि उसमें फेरबदल किया गया है और उसे बड़ा बनाया गया है। हमारे अपने वार्ड की तरह वह लकड़ी के तख्तों से बना है जिसमें गरमी में लू और धूप से, वर्षा में पानी से, शीत ऋतु में सरदी से तथा सभी ऋतुओं में धूलभरी हवाओं से बचाव नहीं हो पाता। मेरे यहाँ पहुँचने के कुछ ही क्षण बाद मुझे उस वार्ड का परिचय दिया गया। मुझे यह बात अच्छी नहीं लग रही थी कि मुझे भारत से निष्कासित कर दिया गया था, लेकिन मैंने भगवान को धन्यवाद दिया कि मांडले में अपनी मातृभूमि और स्वदेश से बलात अनुपस्थिति के

बावजूद मुझे पवित्र स्मृतियाँ राहत और प्रेरणा देंगी। ऐसी अन्य जेलों की तरह यह एक ऐसा तीर्थस्थल है जहाँ भारत का एक महानतम सपूत लगातार छह वर्ष तक रहा था।

हम सभी जानते हैं कि लोकमान्य ने कारावास में छह वर्ष बिताए। लेकिन मुझे विश्वास है कि बहुत कम लोगों को यह पता होगा कि उस अवधि में उन्हें किस हद तक शारीरिक और मानसिक यंत्रणाओं से गुज़रना पड़ा था। वे यहाँ एकदम अकेले रहे और उन्हें कोई बौद्धिक स्तर का साथी नहीं मिला। मुझे विश्वास है कि उन्हें किसी अन्य बंदी से मिलने-जुलने नहीं दिया जाता था। उनको सांत्वना देने वाली एकमात्र वस्तु किताबें थीं और वे एक कमरे में एकदम एकाकी रहते थे। यहाँ रहते हुए उन्हें दो या तीन भेंटों से अधिक का मौका नहीं दिया गया और ये भेंटें भी पुलिस और जेल अधिकारियों की उपस्थिति में हुई होंगी जिससे वे कभी भी खुलकर और हार्दिकता से बात नहीं कर पाए होंगे।

उन तक कोई भी अखबार नहीं पहुँचने दिया जाता था। उनकी जैसी प्रतिष्ठा और स्थिति वाले नेता को बाहरी दुनिया के घटनाचक्रों से एकदम अलग कर देना एक तरह की यंत्रणा ही है और इस यंत्रणा को जिसने भुगता है, वही जान सकता है। इसके अलावा उनके कारावास की अधिकांश अवधि में देश का राजनैतिक जीवन बहुत मंदगति से खिसक रहा था और इस विचार ने उन्हें कोई संतोष नहीं दिया होगा कि जिस उद्देश्य को उन्होंने अपनाया था, वह उनकी अनुपस्थिति में आगे नहीं बढ़ रहा है।

उनकी शारीरिक यंत्रणा के बारे में जितना ही कम कहा जाए, बेहतर होगा। वे दंडसंहिता के अंतर्गत बंदी थे और इस प्रकार आज के राजबंदियों की अपेक्षा कुछ मायनों में उनकी दिनचर्या कहीं अधिक कठोर रही होगी। इसके अलावा उन्हें मधुमेह की बीमारी थी। जब लोकमान्य यहाँ थे, मांडले का मौसम तब भी प्रायः ऐसा रहा होगा जैसा वह आजकल है और आज नौजवानों को शिकायत है कि वहाँ की जलवायु शिथिल कर देने वाली और मंदाग्नि तथा गठिया को जन्म देने वाली है और

धीरे-धीरे पर अटूट रूप में वह व्यक्ति की जीवन-शक्ति को सोख लेती है, तो लोकमान्य ने,जो वयोवृद्ध थे, कितना अधिक कष्ट झेला होगा।

लेकिन इस कारागार की चहारदीवारियों में उन्होंने क्या यातनाएँ सहीं, इसके विषय में लोगों को बहुत कम जानकारी है। कितने लोगों को पता होता है उन अनेक छोटी-छोटी बातों का जो किसी बंदी के जीवन में सूइयों की-सी चुभन बन जाती हैं और जीवन को दूभर बना देती हैं। वे गीता की भावना में मग्न रहते थे और शायद इसीलिए दुख और यंत्रणाओं से ऊपर रहते थे। यही कारण है कि उन्होंने उनके बारे में किसी से कभी एक शब्द नहीं कहा।

समय-समय पर मैं इस सोच में डूबता रहा हूँ कि कैसे लोकमान्य को अपने बहुमूल्य जीवन के छह लंबे वर्ष इन परिस्थितियों में बिताने के लिए विवश होना पड़ा था और हर बार मैंने अपने आपसे पूछा कि "अगर नौजवानों को इतना कष्ट महसूस होता है तो महान लोकमान्य को अपने समय में कितनी पीड़ा सहनी पड़ी होगी, जिसके विषय में उनके देशवासियों को कुछ भी पता नहीं रहा होगा!" यह विश्व भगवान की कृति है लेकिन जेलें मानव के कृतित्व की निशानी हैं। उनकी अपनी एक अलग ही दुनिया है और सभ्य समाज ने जिन विचारों और संस्कारों को प्रतिबद्ध होकर स्वीकार किया है, वे जेलों में लागू नहीं होते। अपनी आत्मा के ह्रास के बिना बंदी-जीवन के प्रति अपने आपको अनुकूल बना पाना आसान काम नहीं है। इसके लिए हमें पिछली आदतें छोड़नी होती हैं और फिर भी स्वास्थ्य और स्फूर्ति बनाए रखनी होती है, सभी तरह के नियमों के आगे नत होना होता है और फिर भी आंतरिक प्रफुल्लता अक्षुण्ण रखनी होती है। दास-वृत्ति ठुकरानी होती है और मानसिक संतुलन अडिग बनाए रखना होता है। केवल लोकमान्य जैसा दार्शनिक ही, जिसे अदम्य इच्छाशक्ति का वरदान मिला था, उस बंदी जीवन के शक्ति हननकारी प्रभावों से बच सकता था, उस यंत्रणा और दासता के बीच मानसिक संतुलन बनाए रख सकता था और 'गीता भाष्य' जैसे विशाल एवं युग-निर्माणकारी ग्रंथ का प्रणयन कर सकता था।

अगर किसी को प्रत्यक्ष अनुभव पाना है कि इतने ज़्यादा प्रतिकूल, शक्तिहारी और दुर्बल बना देने वाले वातावरण में लोकमान्य के 'गीता भाष्य' जैसे पांडित्यपूर्ण एवं

महान ग्रंथ की रचना करने के लिए कितनी प्रबल इच्छाशक्ति, साधना की गहराई एवं सहनशीलता अपेक्षित है, तो जेल में आकर रहना चाहिए। जहाँ तक मेरी अपनी बात है, मैं जितना ही इस विषय में चिंतन करता हूँ उतना ही ज़्यादा मैं उनके प्रति आदर और श्रद्धा में डूब जाता हूँ। आशा करता हूँ कि मेरे देशवासी लोकमान्य की महत्ता को आँकते हुए इन सभी तथ्यों को भी दृष्टिपथ में रखेंगे। जो महापुरुष मधुमेह से पीड़ित होने के बावजूद – इतने सुदीर्घ कारावास को झेलता गया और फिर भी जिसने अपनी समस्त बौद्धिक क्षमता एवं संघर्ष-शक्ति को अक्षुण्ण बनाए रखा और जिसने उन अंधकारमय दिनों में अपनी मातृभूमि के लिए ऐसी अमूल्य भेंट तैयार की, उसे विश्व के महापुरुषों की श्रेणी में प्रथम पंक्ति में स्थान मिलना चाहिए।

लेकिन लोकमान्य ने प्रकृति के जिन अटल नियमों से अपने बंदी जीवन के दौरान टक्कर ली थी, उनको अपना बदला लेना ही था और अगर मैं कहूँ तो मेरा विश्वास है कि जैसे देशबंधु के शरीरांत का क्रम अलीपुर केंद्रीय कारागार में आरंभ हो गया था वैसे ही लोकमान्य ने जब मांडले को अंतिम नमस्कार किया था तो उनके जीवन के दिन गिने-चुने ही रह गए थे। निस्संदेह यह एक गंभीर दुख का विषय है कि हम अपने महानतम पुरुषों को इस प्रकार खोते रहे लेकिन मैं यह भी सोचता हूँ कि क्या वह दुखद दुर्भाग्य किसी न किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता था।

आदरपूर्वक
आपका स्नेहभाजक
सुभाष सी.बोस

बोध-प्रश्न

1. सुभाष चंद्र बोस को मांडले जेल का परिवेश कैसा लगा?
2. भारत से निष्कासित कर दिए जाने पर भी सुभाष चंद्र बोस ने भगवान को धन्यवाद क्यों दिया?

3. मांडले जेल में लोकमान्य तिलक के लिए पुस्तकें ही सांत्वना की एकमात्र वस्तु क्यों थीं?
4. लोकमान्य तिलक को अपने छह वर्ष के कारावास के दौरान किन-किन शारीरिक और मानसिक यंत्रणाओं से गुज़रना पड़ा होगा?
5. लोकमान्य तिलक ने अपने दुख और यंत्रणाओं के बारे में किसी से एक शब्द भी क्यों नहीं कहा?
6. "गीता रहस्य" जैसे महान ग्रंथ की रचना से लोकमान्य तिलक के किन गुणों पर प्रकाश पड़ता है?
7. सुभाष चंद्र बोस के अनुसार लोकमान्य तिलक की कौन-सी अमूल्य भेंट उन्हें विश्व के महापुरुषों के समकक्ष बनाती है?

3 काश, मैं मोटर साइकिल होता



श्रीलाल शुक्ल

मैंने धीरे-धीरे आँखें खोलीं, पूछा, "मैं कहाँ हूँ?"

मेरे और चमकीले आसमान के बीच एक लंबा-चौड़ा चेहरा था, उसी ने जवाब दिया, "नाली में।"

तब मैंने दूसरा सवाल किया, "मुझे क्या हुआ है?"

"तुम्हारी मोटर साइकिल टूट गई है।" ज़वाब मिला।

सुनते ही मेरी बेहोशी गायब हो गई, मैं पूरी तौर से होश में आ गया। एक दरकी हुई टाँग, एक टूटी हुई बाँह, सनसनाती खोपड़ी, रुआँसी शक्ल – पूरी तौर से होश में आ जाने का शायद यही मतलब था।

मैंने पूछा, "मेरी मोटर साइकिल को क्या हुआ है?"

"शायद तुम्हारा दायाँ हाथ टूट गया है।" भीड़ में से किसी ने कहा। हुआ यह था कि अब तक मुझे जो भूत-प्रेत और चुड़ैलें हवा में तैरती नज़र आ रही थीं उन्हीं को लेकर अब यह हमदर्द इनसानों की भीड़ बन गई थी।

तो ऐसा ही हुआ था। यानी मेरा दायाँ हाथ टूट गया था। दरअसल, कुछ उससे भी ज़्यादा हुआ था। यानी टाँग की एक हड्डी भी दरक गई थी, कंधे को भी शायद कुछ हुआ था, सिर चकरा रहा था। और गंदे पानी की एक नाली मुझमें थी, मैं नाली में था।

हमदर्द लोगों ने सहारा देकर नाली से बाहर निकाला। मैं उसी के किनारे कूड़े के ढेर जैसा पसर गया। तब तक दूर किसी मोटर का हार्न सुनाई पड़ा। लंबे-चौड़े चेहरे ने कहा, "वाह ! ऐंबुलेंस आ गई !"

अब तक घटना-चक्र कुछ-कुछ समझ में आ चुका था। हुआ यह था कि मैं आज इस बसंती हवा में अपनी मोटर साइकिल से इस अजनबी सड़क पर आ निकला था और तभी कोई ट्रक मेरी मोटर साइकिल को पीछे से छूता हुआ निकल गया था। ट्रक के लिए यह मामूली-सी घटना थी, मगर वही मेरे और मेरी मोटर-साइकिल के लिए दुर्घटना बन गई थी।

जो भी हो, इस वक्त मेरी मोटर साइकिल मुझसे पाँच गज़ दूर टूटी-फूटी हालत में पड़ी थी। मैं नाली के किनारे का ढेर था। हमदर्द भीड़ हमारे चारों ओर थी, किसी ने कहीं से शहर के अस्पताल में ऐंबुलेंस के लिए फ़ोन कर दिया था। ताज्जुब की बात, महज़ इतने से ऐंबुलेंस आ भी गई थी।

ऐंबुलेंस का ड्राइवर बावरदी, बामुलाहिज़ा, होशियार किस्म का आदमी निकला। उसने उस ढेर को गौर से देखा जो मैं था, फिर दूसरे ढेर को भी उतने ही गौर से देखा जो मेरी मोटर साइकिल थी। फिर उसने अपने साथ के एक बाबूनुमा आदमी के साथ कुछ विचार-विमर्श करना शुरू कर दिया। बाबू कोई नक्शा देख रहा था। ड्राइवर भी उस नक्शे पर झुक गया। फिर सीधा होकर वह अपनी सीट पर जाकर बैठ गया। देखते-देखते उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी। कोई कुछ कहता, इसके पहले ही गाड़ी जिधर से आई थी, उधर ही चली गई।

लंबे-चौड़े चेहरेवाले ने इस बार कुछ ज़्यादा ही मुसकराकर मुझे समझाया, "घबराओ नहीं भाई, झगड़ा जुरिस्डिक्शन का है।"

"जुरिस्डिक्शन?"

"यानी अधिकार-क्षेत्र? ड्राइवर कहता है कि आप जिस नाली में गिरे हैं, वह प्रतापगढ़ ज़िले में है। ऐंबुलेंस इलाहाबाद की है। वह प्रतापगढ़ नहीं जा सकती। आपको ले जाने के लिए प्रतापगढ़ वाली ऐंबुलेंस को बुलाना चाहिए था।"

मैंने कराहते हुए कहा," भाई साहब, आप एक बैलगाड़ी का इंतज़ाम कर दें। उस पर मुझे और मेरी मोटर साइकिल को लदवाकर प्रतापगढ़ भेज दीजिए। मैं वहीं का रहने वाला हूँ।"

वह बोला, "आपको तो प्रतापगढ़ भेज सकता हूँ, पर भाई, मोटर साइकिल आपके साथ कैसे जा सकती है?"

"क्यों भाई?"

"इसलिए भाई कि तुम जिस नाली में पड़े हो वह तो प्रतापगढ़ में है पर मोटर साइकिल जहाँ पड़ी है, वह ज़मीन इलाहाबाद ज़िले की है। मोटर बीमावाले इलाहाबाद से आकर इसे ले जाएँगे। इसकी मरम्मत इलाहाबाद में होगी, आपकी प्रतापगढ़ में।"

मैं प्रतापगढ़ भी नहीं जा पाया। लंबे-चौड़े चेहरे वाले आदमी का नाम भारत जी था। भारत जी मुझे अपने घर ले आए। घर नाली के पास ही था। बोले, "आप इस वक्त प्रतापगढ़ जाने की हालत में नहीं हैं। आपका यहीं इलाज करा दूँगा। आपकी मोटर साइकिल मैंने इलाहाबाद के बीमा ऑफ़िसर के हवाले कर दी है। आप यहीं रुककर तंदुरुस्ती बनाइए और आराम से मोटर साइकिल का इंतज़ार कीजिए।"

मैंने पूछा, "चाय मिल सकती है? "

वे अकेले आदमी थे। उन्होंने मुझे रसोईघर का रास्ता बता दिया।

कराहता, लुढ़कता, टटोलता हुआ मैं जब वहाँ जाकर अपनी चाय बनाने लगा, तो ड्राइंगरूम से भारत जी की आवाज़ आई,"एक प्याला चाय मेरे लिए बना लीजिएगा। प्याले जूठे पड़े हैं। पहले उन्हें साफ़ कर लेना।"

इसके बाद मेरे और भारत जी के रिश्ते साफ़ हो गए। उन्होंने जर्राह को बुलाकर मेरे जिस्म में कुछ खपच्चियाँ बँधवाई। मैं रोज़ उनके प्याले साफ़ करने लगा, चाय बनाने लगा, फिर उनका खाना भी।

इस तरह भारत जी की सेवा और मोटर साइकिल का इंतज़ार करते हुए डेढ़ महीना बीत गया। तब एक दिन इलाहाबाद का बीमा ऑफ़िसर मेरी मोटर साइकिल के साथ प्रकट हुआ। गाड़ी का कायाकल्प हो चुका था। वह नई गाड़ी से भी ज़्यादा नई लगती थी। कायाकल्प का खर्च बीमावालों ने ही उठाया था। खर्च में कुछ फर्ज़ी

चीज़ें जोड़कर उन्होंने एक अच्छी-खासी रकम नकद भी निकाल ली थी। उसका दो-तिहाई मिस्त्री और बीमा-अफ़सर में बँट चुका था। एक तिहाई मेरे और भारत जी के बीच बँटा।

मेरे सामने चमचमाती हुई मोटर साइकिल थी, मुट्ठी में कड़कड़ाते नोटों का एहसास था। उससे मेरे कंधे का दर्द जाता रहा, हाथ की हड्डी एक मिनट में जुड़ गई। टाँग की घिसटन गायब हो गई। भारत जी ने मेरा कंधा थपथपाया, बीमा-अफ़सर ने मुझे बधाई दी, एक व्याख्यान भी दिया। कहा, "जब तक मैं इलाहाबाद में हूँ, आप प्रतापगढ़ के चक्कर में मत पड़िए। अगली बार दुर्घटना हो तो आप इलाहाबाद ज़िले में ही गिरिएगा। प्रतापगढ़ वालों का कोई भरोसा नहीं। इलाहाबाद में हम सब ठीक कर देंगे। आपकी मोटर साइकिल के चाहे सौ टुकड़े हो जाएँ, मैं इसका फिर से कायाकल्प करा दूँगा। और आप अपनी फ़िक्र तो करें ही नहीं। आपकी सारी दिक्कतें जीवन बीमा वाले सुलझा देंगे। आपको हमारी टेरिटरी में कभी कोई परेशानी न होगी। एक्सिडेंट में आप मर जाएँ, तब भी कोई बात नहीं। यकीन मानें, आपके मर जाने पर हम बीमा वाले आपको यानी आपके घरवालों को मालामाल कर देंगे।"

मैंने कहा कुछ नहीं, सिर्फ़ सोचा, मुझसे अच्छी किस्मत तो मेरी मोटर साइकिल की है !

बोध-प्रश्न

1. होश आते ही लेखक ने स्वयं को कहाँ और किस हाल में पाया?
2. नक्शा देखते ही बाबू और ड्राइवर ऐंबुलेंस लेकर क्यों लौट गए?
3. दुर्घटनाग्रस्त लेखक को घर ले जाने से पहले और बाद में भारत जी के व्यवहार में क्या-क्या परिवर्तन दिखाई देते हैं?
4. अंततः लेखक की मोटर साइकिल का क्या हुआ?

5. बीमा अफ़सर ने यह क्यों कहा कि "अगली बार दुर्घटना हो तो आप इलाहाबाद ज़िले में ही गिरिएगा?"
6. लेखक को यह क्यों लगा कि उसकी मोटर साइकिल की किस्मत उससे अधिक अच्छी है?
7. लेखक ने इस घटना के माध्यम से बीमा अधिकारियों पर क्या व्यंग्य किया है?
8. अधिकार-क्षेत्र के नियम के कारण दुर्घटना में बुरी तरह घायल व्यक्ति को उसके हाल पर छोड़ देना आपकी दृष्टि में कहाँ तक उचित है?

4 | ऋण-शोध

ऋता शुक्ल



किसी आदमी की पूरी ज़िंदगी मौत से भी किस कदर बदतर हो सकती है, यह मैंने पहली बार आशुतोष काका के निकट रहकर देखा था। छोटी ही थी, जब बाबूजी ने उन्हें हमसे परिचित कराया था,"बिट्टी और विकास, ये तुम्हारे मास्टर साहब हैं। आज से ही तुम दोनों इनसे पढ़ना शुरू कर दो। चलो, पैर छूकर प्रणाम करो।"

आशुतोष काका की वह निरीह मुद्रा मैं आज तक नहीं भुला पाई हूँ। धूल से सने अपने दोनों पैरों को समेटकर काका,"रहने दो", "रहने दो" कहते हुए बेतरह सकुचा गए थे। झुककर उन्होंने हम दोनों भाई-बहनों के माथे पर हाथ फेरा था। बिना बटन वाले उनके मोटिया कुरते के खुले गले से झाँकता अधमैला जनेऊ बाहर निकल आया था। जनेऊ में काले धागे से बँधी एक छोटी-सी चाबी झूल रही थी। पाँच बरस के विकास ने कौतुकवश उनकी चाबी खींच ली थी,"यह क्या है, मास्साऽऽब?"

बाबूजी ने फ़ौरन टोका था,"काका कहो बेटे, ये तुम्हारे काका लगेंगे।" आशुतोष काका ने हलकी-सी झेंपभरी हँसी हँसकर बाबूजी के सामने सफ़ाई दी थी,"गाँव के विनायक पंडित ने शनि महाराज का प्रकोप बताया है। काला सूता देह से सटा रहे तो...." आशुतोष काका ने तीसरी से नवीं कक्षा तक हमें पढ़ाया था। उन छह-सात वर्षों में विकास की शरारती बुद्धि ने शायद ही कभी उन्हें चैन से बैठने दिया हो.....।

काका की पीठ पर लगातार झूलना और उनके कुरते के झिरझिरे हिस्से में उँगली डालकर ढेर सारे टूटे हुए धागों को बाहर निकालना उसका सबसे मज़ेदार खेल था।

सवाल हल न करने पर कभी-कभी काका कहा करते, "बिट्टी, विकास....! हम तुम दोनों की शिकायत बड़े भैया से कर देंगे ! फिर देखना कैसी कनइटी पड़ेगी।"

उन्हें बातों में बहलाकर रिझाने की कला हमने अच्छी तरह सीख ली थी, "काकाजी, आपने कहा था न, आप हमें लालबहादुर शास्त्री की कहानी सुनाएँगे?"

"हाँ, बेटे...शास्त्री जी बहुत साधारण परिवार से आए थे..."

"वे प्रधानमंत्री कैसे बने?"

"अपनी मेहनत, ईमानदारी और लगन से, बिट्टी !"

"क्या उनका कुरता भी फटा होता था, काका?"

"सवालों पर ध्यान दो, विकास !" काका विकास की ऐसी बातों को जान-बूझकर टालते हुए खुले आसमान की ओर निहारने लगते।

हम नवीं कक्षा में थे, जब आशुतोष काका ने आरा से जाने की तैयारी की थी। बक्सर के किसी मिडिल स्कूल में उन्हें हेडमास्टरी मिल गई थी और वे बाबू जी से विदा माँगने उस दिन हमारे घर आए थे, "सोच रहे हैं कि स्कूल में काम करते-करते पढ़ाई पूरी कर लें। आपकी मदद चाहिए भैया, एम. ए. की किताबों का खरच-बरच...।"

बाबूजी ने उन्हें सहायता का आश्वासन दिया था और काका ने उनके पैर छू लिए थे। विकास के माथे पर हाथ फेरकर आशीष देते वक्त उनकी आँखें नम हो गई थीं, "खूब मन लगाकर पढ़ना बेटे, बिट्टी से लड़ाई मत करना।"

आशुतोष काका के चले जाने के बाद कोई भी मास्टर हमें अच्छा नहीं लगा था और हमने बाबूजी से साफ़ कह दिया था, "हम अपने-आप पढ़ेंगे....।"

एम. ए. पास करने के बाद काका हमारे यहाँ आए थे। विकास ने फाटक पर ही उन्हें देख लिया था,"बिट्टी दी, जल्दी बाहर आओ न, अपने आशुतोष काका आए हैं।"

विकास बड़ी हैरत में था,"काका,काका... आप तो एम. ए. पास करने के बाद भी बिलकुल नहीं बदले।"

"एम. ए. पास करने के बाद आदमी बदल जाता है क्या?"

"गाँव के अपने राजकिशोर भैया भी तो एम. ए. पास हैं। चौड़ी मोहरी की पैंट, छींट की बुश्शर्ट, पतली-नुकीली मूँछ और सुनहला चश्मा...! ...आप भी पैंट पहनिए न, काका ऽऽ! आप तो राजकिशोर भैया से कितने लंबे-चौड़े हैं। आपके ऊपर पैंट-शर्ट खूब जमेगी काका, प्लीज़ ऽऽ!"

विकास के भोले इसरार पर काका एक फीकी हँसी हँसकर टाल गए थे। अम्माँ ने उसे धीरे-से धमकाया था,"कपड़ों की बात करके बराबर काका को परेशान नहीं करते, विकास...अब तू सयाना हो रहा है। तुझे अकल आनी चाहिए। तेरे आशुतोष काका के चार-चार बच्चे हैं। उन्हें खिलाने-पिलाने पर खर्च करेंगे कि अपनी दशा सुधारेंगे? बोल तो...!"

उम्र के साथ-साथ काका की फटेहाली और भी बढ़ती गई थी। बेटियों के ब्याह का भार, बेटों की पढ़ाई का खर्च और फैलती हुई गृहस्थी की हज़ार छोटी-मोटी चिंताएँ....।

काका ने हमें एक सबक याद कराया था,"चिंता मौत से भी बुरी चीज़ होती है, वह हमारे जीवन को कुतर-कुतरकर खा जाती है।"

काका की शीशम-सी पुख्ता काया को चिंताओं के काष्ठ-कीट ने कुतर-कुतरकर खोखला बना दिया था। अभावों की तपिश को झेल सकने में असमर्थ उनके तने हुए कंधे असमय ही झुक गए थे। होली हो या दशहरा, काका की देह पर नए कपड़े का सुयोग कभी नहीं बन पाता था। फ़र्स्ट डिवीज़न से मेरे बी.ए. पास करने की खुशी में अम्माँ ने उन्हें रेशमी किनारे की धोती और मलमल का कुरता भेंट किया था। आशुतोष काका के शब्दों से फूटती बेबसी ने उनकी आँखों

में उभर आए आनंद के रंग को फीका कर दिया था, "मलमल पहनाकर हमारी आदत मत बिगाड़िए भौजी, जनमभर तो हमें मोटिया ही पहनना है न ! बाद में अम्माँ को गाँव के किसी संबंधी ने बताया था, अम्माँ के दिए हुए नए कपड़े आशुतोष काका के बड़े बेटे ने हथिया लिए थे।

विकास के डॉक्टरी पास कर जाने की खुशी में अम्माँ ने सत्यनारायण भगवान की कथा कहलवाई थी। विकास को ताकीद की थी कि आशुतोष काका को पंद्रह दिन पहले ही न्योता भेजा जाए। बाबूजी ने सबके सामने काका का परिचय विकास के पहले गुरु के रूप में दिया था और विकास ने उठकर काका के पाँव छू लिए थे। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए काका की आँखें छलछला आई थीं।

सारे बाहरी मेहमानों के चले जाने पर रसोई के ओसारे में बिठाकर अम्माँ ने काका को अपने सामने खिलाया था। उस दिन पहली बार काका इतने उद्‌विग्न, इतने मर्माहत दिखाई पड़े थे, "परिवार में सुख-शांति न हो तो जिंदगी बोझ बन जाती है, भौजी ! बाल-बच्चों के पीछे हमने अपनी काया गला दी, लेकिन हमारी बात का आज तक घर में कोई मोल न रहा। यह फटा हुआ कोट देख रही हैं न ! बस, सारे रिश्तों को ऐसी ही मजबूरी में हमने अपनी पीठ पर ढोया है। बेटा, बेटी, घरवाली... सबके लिए जितने फर्ज़ हो सकते हैं, वे मेरे हिस्से के, और मेरी कीमत उनके लिए कुछ भी नहीं... सुजीत और विकास दोनों लगभग एक ही उम्र के होंगे, पर कभी जो सुजीत मेरे पास आकर बैठा हो...।"

अपनी हाल की लंबी बीमारी के दौर का एक प्रसंग सहसा काका को याद आ गया था। सिरदर्द से वे रातभर कराहते रहे थे। बगलवाली कोठरी में उनका बड़ा बेटा सुजीत सोया हुआ था। पत्नी, दोनों बेटियों और छोटे बेटे के साथ मायके गई हुई थी। न उन्होंने बेटे को आवाज़ दी और न बेटे ने खुद उठकर आने की ज़रूरत समझी।

....सामने वाले मकान के कमला बाबू ने आकर दर्द कम करने वाली गोली दी थी और दूसरे दिन ही उन्हें तेज़ बुखार चढ़ आया था, "आप लोगों के दर्शन का सुयोग था। मौत के मुँह से निकल आया भैया, वरना..."

बाबूजी ने उनके बड़े बेटे की नौकरी का प्रसंग उठाया था, "बी.ए. के बाद बिहार की सरकारी प्रतियोगिता परीक्षा में बैठने की तैयारी कर रहा है भैया, हर महीने दो सौ रुपए तो उसकी किताबों आदि में ही निकल जाते हैं। उस पर अपनी अम्माँ के सामने मुझे कोसता रहता है कि मैंने उसे किसी बड़े शहर के अच्छे कॉलेज में तालीम नहीं दिलवाई, उसके लिए पैरवी नहीं की, उसके लिए कुछ नहीं किया।"

काका के जाते समय विकास ने उनके पैरों पर एक सौ एक रुपए रखकर उन्हें प्रणाम करना चाहा था।

काका ने विनम्रता, किंतु दृढ़ता के साथ रुपए उसकी हथेली पर रख दिए थे "तुम्हें, मैंने बेटे से कम कभी नहीं माना, विकास ! जिन गुणों की मैंने अपने सुजीत में कल्पना की थी, उनकी झलक मुझे तुममें मिली, बेटे! तुम्हारे निर्माण में मेरा भी योगदान है, मेरे जीवन के लिए यह गौरव ही यथेष्ट रहे। ये रुपए देकर मुझे छोटा मत करो..."

रिक्शे पर बैठे काका का दायाँ हाथ आशीष की मुद्रा में उठ गया था, दूर तक पीछे मुड़-मुड़कर उनकी सतृष्ण आँखें विकास को निहारती रही थीं।

फिर बहुत दिनों तक काका की कोई खबर नहीं मिल सकी थी। विकास की पहली नियुक्ति डाल्टनगंज में हुई थी। अपने एक पत्र में उसने लिखा था – सुजीत मेरे ही ब्लॉक में बी.डी.ओ. बनकर आया है बिट्टी दी, मैंने उससे काका की खबर पूछी तो ऐसे कतराकर निकल गया, जैसे मैंने कोई बहुत ही अप्रिय प्रसंग उठा दिया हो... यह तो बाद में पता चला कि उसने अपने मातहतों के बीच अपना लंबा-चौड़ा मनगढ़ंत परिचय फैला रखा है कि वह एक रिटायर्ड एस.पी. का बेटा है, कि उसके मामा केंद्रीय स्तर के राजनीतिज्ञ हैं। गाँव में उसकी लंबी-चौड़ी मिल्कीयत है। सबसे बड़ी विडंबना तो यह है बिट्टी दी, कि सुजीत तिवारी ने अपने पिता को स्वर्गवासी घोषित कर दिया है... आम की गुठली से बबूल पनपते मैंने पहली बार देखा। यह सब काका सुनेंगे, तो उन पर क्या बीतेगी?

लेकिन काका सब कुछ जानते हुए भी चुप थे...अपनी बेटी के ब्याह के समय भविष्य-निधि से ऋण लेने के सिलसिले में उनका आरा आना हुआ था। अम्माँ ने काका से यूँ ही पूछ लिया था,"सुजीत ने कोई मदद...?"

"सुजीत का जीवन बन गया भौजी, मेरे लिए इतना ही बहुत है। मुझे उससे या अपनी किसी संतान से मदद की कोई अपेक्षा नहीं। अपनी ओर से जन्म देने का ऋण यथासंभव चुका देना चाहता हूँ, बस।"

काका के आग्रह पर अम्माँ ब्याह में शामिल होने के लिए उनके घर गई थीं। उन्हीं से पता चला कि सुजीत अपनी बहन के ब्याह में निहायत औपचारिक तौर पर शामिल हुआ था। बरात वाले दिन पहुँचा और विदाई के दूसरे दिन ही वापस चला गया। कन्यादान के समय हाथ में कुश लेकर निस्तब्ध बैठे आशुतोष काका की निरीह मुद्रा अब भी अम्माँ की आँखों में थी। धूल के रंग की खादी का लंबा कुरता और पीली धोती। कंधे से झूलते जनेऊ में वही काला सूता, गले में काली ताबीज़ और उँगली में घोड़े की नाल की अँगूठी...ज़िंदगी को अपनी मुट्ठी में जकड़ने के कितने टोटके काका ने किए थे, लेकिन... ज़िंदगी ने कभी उन्हें खुलकर हँसने तक का मौका नहीं दिया। मिडिल-स्कूल की हेडमास्टरी से अवकाश पाने के बाद उनका एक पत्र बाबूजी के नाम आया था, बरसों की मेहनत ने बहुत थका दिया था भैया, अब आराम करूँगा। वैसे भी अब कोई बोझ सिर पर बाकी नहीं रहा। बेटियों का कर्ज़ उतार ही चुका हूँ, छोटा अजित भी इंजीनियर हो गया। हम दोनों के गुज़ारे के लिए गाँव की थोड़ी-बहुत ज़मीन काफ़ी है... विकास बेटे के ब्याह में नहीं आ सका, कभी आऊँगा।

अम्माँ ने पोते के जन्म पर आशुतोष काका को बुलाया था। उन्होंने काका के पास गाँव के सबसे अधिक बुज़ुर्ग रामकिरपाल बाबा की देह का उतरन लेते आने की फ़रमाइश लिखवा भेजी थी। बच्चा सतइसा में पड़ा था , अम्माँ उसे सत्ताईस दिनों तक उसी पुराने कपड़े का झबला पहनाने पर तुली बैठी थीं।

जल्दी में काका अम्माँ की फ़रमाइश पूरी किए बगैर ही चले आए थे... विकास ने बड़े अनोखे ढंग से अम्माँ की समस्या का हल ढूँढ़ निकाला था,"मेरे लिए

काकाजी से बढ़कर दूसरा कोई पूज्य नहीं। बच्चे को इनकी पुरानी धोती के टुकड़े में लपेटा जाए... मैं अभी काकाजी से कहता हूँ।"

विकास के हठ के सामने काका की एक नहीं चल सकी थी। वह उनके लिए बाज़ार से नए कपड़े ले आया था। कपड़े बदलकर काका ओसारे में आए तो विकास ने उनकी पुरानी धोती के आधे हिस्से में लिपटे हुए नन्हें शिशु को उनके चरणों पर लिटा दिया था,"इसे आशीर्वाद दीजिए काका, यह आपकी तरह बन सके।"

गोद में लेटे बच्चे के उजले माथे पर अपनी थरथराती उँगलियों से असीस बिखेरते काका किसी तरह इतना भर ही कह सके थे," इतना सुख कैसे झेला जाता है, इसका मुझे कोई अभ्यास नहीं है, बेटे ! किसी जन्म का मेरा कोई ऋण ज़रूर तुम पर रहा होगा, तभी तो..." और काका की आवाज़ उनके गले में ही रुँधकर रह गई और उनकी आँखों के सामने सहसा सब कुछ धुँधला गया।

बोध-प्रश्न

1. लेखिका ने आशुतोष काका का प्रथम परिचय किन शब्दों में दिया है?
2. आशुतोष काका विकास की माता द्वारा दिए गए वस्त्रों को लेने में क्यों आनाकानी कर रहे थे?
3. आशुतोष काका अपने सारे रिश्तों को मजबूरी का नाम क्यों देते हैं?
4. आशुतोष काका ने विकास द्वारा दिए गए रुपए स्वीकार क्यों नहीं किए? इससे उनके चरित्र की कौन-सी विशेषता उभरकर सामने आती है?
5. "आम की गुठली से बबूल पनपते मैंने पहली बार देखा।" विकास ने यह बात किस प्रसंग में कही और क्यों?
6. विकास ने अपने पुत्र को आशुतोष काका की पुरानी धोती के टुकड़े में क्यों लपेटना चाहा?
7. विकास ने आशुतोष काका से अपने पुत्र के लिए क्या आशीर्वाद माँगा? काका की इस पर क्या प्रतिक्रिया हुई?
8. कहानी में वर्णित प्रसंगों के आधार पर सुजीत एवं विकास के चरित्र की तुलना कीजिए।
9. इस कहानी में किसने किसका ऋण चुकाया है और किस प्रकार?

5 मुगलों ने सल्तनत बख्श दी

भगवतीचरण वर्मा



हीरो जी को आप नहीं जानते, और यह दुर्भाग्य की बात है। इसका यह अर्थ नहीं कि केवल आपका दुर्भाग्य है, दुर्भाग्य हीरो जी का भी है। कारण, वह बड़ा सीधा-सादा है। यदि आपका हीरो जी से परिचय हो जाए, तो आप निश्चय समझ लेंगे कि आपका संसार के एक बहुत बड़े विद्वान से परिचय हो गया। हीरो जी को जानने वालों में अधिकांश का मत है कि हीरो जी पहले जन्म में विक्रमादित्य के नव-रत्नों में एक अवश्य रहे होंगे और अपने किसी पाप के कारण उनको इस जन्म में हीरो जी की योनि प्राप्त हुई।

हीरो जी ने दुनिया देखी है। यहाँ यह जान लेना ठीक होगा कि हीरो जी की दुनिया मौज और मस्ती की ही बनी है। हीरो जी के दर्शन प्रायः चाय की दुकान पर हुआ करते हैं। जो पहुँचता है, वह हीरो जी को एक प्याला चाय अवश्य पिलाता है। उस दिन जब हम लोग चाय पीने पहुँचे, तो हीरो जी एक कोने में आँखें बंद किए हुए बैठे कुछ सोच रहे थे। हम लोगों में बातें शुरू हो गईं, और हरिजन-आंदोलन से घूमते-फिरते बात आ पहुँची दानवराज बलि पर। पंडित गोवर्धन शास्त्री ने आमलेट का टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा "भाई, यह तो कलियुग है। न किसी में दीन है न ईमान। कौड़ी-कौड़ी पर लोग बेईमानी करने लग गए हैं। अरे, अब तो लिखकर भी लोग मुकर जाते हैं। एक युग था, जब दानव तक अपने वचन निभाते थे, सुरों और नरों की तो बात ही छोड़ दीजिए। दानवराज बलि ने

वचनबद्ध होकर सारी पृथ्वी दान कर दी थी। पृथ्वी ही काहे को, स्वयं अपने को भी दान कर दिया था।"

हीरो जी चौंक उठे। खाँसकर उन्होंने कहा " क्या बात है? ज़रा फिर से तो कहना !"

सब लोग हीरो जी की ओर घूम पड़े। कोई नई बात सुनने को मिलेगी, इस आशा से मनोहर ने शास्त्री जी के शब्दों को दुहराने का कष्ट उठाया "हीरो जी! ये गोवर्धन शास्त्री जी हैं, सो कह रहे हैं कि कलियुग में धर्मकर्म सब लोप हो गया। त्रेता में तो दैत्यराज बलि तक ने अपना सब कुछ केवल वचनबद्ध होकर दान कर दिया था।"

हीरो जी हँस पड़े, "तो यह गोवर्धन शास्त्री कहने वाले हुए और तुम लोग सुनने वाले, ठीक ही है। लेकिन हमसे सुनो, यह तो कह रहे हैं त्रेता की बात, अरे, तब तो अकेले बलि ने ऐसा कर दिया था ; लेकिन मैं कहता हूँ कलियुग की बात। कलियुग में तो एक आदमी की कही हुई बात उसकी सात-आठ पीढ़ी तक निभाती गई और यद्यपि वह पीढ़ी स्वयं नष्ट हो गई, लेकिन उसने अपना वचन नहीं तोड़ा।"

हम लोग आश्चर्य में आ गए। हीरो जी की बात समझ में नहीं आई, पूछना पड़ा – " हीरो जी , कलियुग में किसने इस प्रकार अपने वचनों का पालन किया है?"

"बच्चे हो न!" हीरो जी ने मुँह बनाते हुए कहा –"जानते हो मुगलों की सल्तनत कैसे गई?"

"हाँ ! अंग्रेज़ों ने उनसे छीन ली।"

"तभी तो कहता हूँ कि तुम सब लोग बच्चे हो। स्कूली किताबों को रट-रट कर बन गए पढ़े लिखे आदमी। अरे, मुगलों ने अपनी सल्तनत अंग्रेज़ों को बख्श दी थी।"

हीरो जी ने यह कौन-सा नया इतिहास बनाया? आँखें कुछ अधिक खुल गईं। कान खड़े हो गए। मैंने कहा –"सो कैसे?"

"अच्छा तो फिर सुनो!"– हीरो जी ने आरंभ किया –"जानते हो शहंशाह शाहजहाँ की लड़की शहज़ादी रौशनआरा एक दफे बीमार पड़ी थी, और उसे एक अंग्रेज़ डॉक्टर ने अच्छा किया था। उस डॉक्टर को शहंशाह शाहजहाँ ने हिंदुस्तान में तिजारत करने के लिए कलकत्ते में कोठी बनाने की इज़ाज़त दे दी थी।"

"हाँ, यह तो हम लोगों ने पढ़ा है।"

"लेकिन असल बात यह है कि शहज़ादी रौशनआरा, वही शहंशाह शाहजहाँ की लड़की, हाँ वही शहज़ादी रौशनआरा एक दफे जल. गई। अधिक नहीं जली थी। अरे, हाथ में थोड़ा-सा जल गई थी, लेकिन जल तो गई थी और थी शहज़ादी। बड़े-बड़े हकीम और वैद्य बुलाए गए। इलाज किया गया; लेकिन शहज़ादी को कोई अच्छा न कर सका – न कर सका। और शहज़ादी को भला अच्छा कौन कर सकता था? वह शहज़ादी थी न ! सब लोग लगाते थे लेप, और लेप लगाने से होती थी जलन। और तुरंत शहज़ादी ने धुलवा डाला उस लेप को। भला शहज़ादी को रोकनेवाला कौन था। अब शहंशाह सलामत को फ़िक्र हुई! लेकिन शहज़ादी अच्छी हो तो कैसे? वहाँ तो दवा असर करने ही न पाती थी।"

उन्हीं दिनों एक अंग्रेज़ घूमता-घामता दिल्ली आया। दुनिया देखे हुए, घाट-घाट का पानी पिए हुए, पूरा चालाक और मक्कार ! उसको शहज़ादी की बीमारी की खबर लग गई। नौकरों को घूस देकर उसने पूरा हाल दरियाफ़्त किया। उसे मालूम हो गया कि शहज़ादी जलन की वजह से दवा धुलवा डाला करती है। सीधे शहंशाह सलामत के पास पहुँचा। कहा कि डॉक्टर हूँ। शहज़ादी का इलाज उसने अपने हाथ में ले लिया। उसने शहज़ादी के हाथ में एक दवा लगाई। उस दवा से जलन होना तो दूर रहा, उलटे जले हुए हाथ में ठंडक पहुँची। अब भला शहज़ादी उस दवा को क्यों धुलवाती। हाथ अच्छा हो गया। जानते हो वह दवा क्या थी? हम लोगों की ओर भेदभरी दृष्टि डालते हुए हीरो जी ने पूछा।

"भाई, हम दवा क्या जानें?" कृष्णानंद ने कहा।

"तभी तो कहते हैं कि इतना पढ़-लिखकर भी तुम्हें तमीज़ न आई। अरे, वह दवा थी वेसलीन – वही वेसलीन, जिसका आज घर-घर में प्रचार है।"

"वेसलीन ! लेकिन वेसलीन तो दवा नहीं होती।" मनोहर ने कहा।

हीरो जी सँभलकर बैठ गए। फिर बोले–"कौन कहता है कि वेसलीन दवा होती है? अरे, उसने हाथ में लगा दी वेसलीन और घाव आप-ही-आप अच्छा हो गया। वह अंग्रेज़ बन बैठा डॉक्टर – और उसका नाम हो गया। शहंशाह शाहजहाँ बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस फिरंगी डॉक्टर से कहा – "माँगो।" उस फिरंगी ने कहा – "हुज़ूर, मैं इस दवा को हिंदुस्तान में रायज करना चाहता हूँ, इसलिए हुज़ूर, मुझे हिंदुस्तान में तिजारत करने की इज़ाज़त दे दें।" बादशाह सलामत ने जब यह सुना कि डॉक्टर हिंदुस्तान में इस दवा का प्रचार करना चाहता है, तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा –"मंज़ूर ! और कुछ माँगो।" तब उस चालाक डॉक्टर ने जानते हो क्या माँगा? उसने कहा – "हुज़ूर मैं एक तंबू तानना चाहता हूँ, जिसके नीचे इस दवा के पीपे इकट्ठे किए जाएँगे। जहाँपनाह यह फ़रमा दें कि उस तंबू के नीचे जितनी ज़मीन आएगी, वह जहाँपनाह ने फिरंगियों को बख्श दी।" शहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, उन्होंने सोचा, तंबू के नीचे भला कितनी जगह आएगी। उन्होंने कह दिया –"मंज़ूर।"

"हाँ, तो शहंशाह शाहजहाँ थे सीधे-सादे आदमी, छल-कपट उन्हें आता न था। और वह अंग्रेज़ था दुनिया देखे हुए। सात समुद्र पार करके हिंदुस्तान आया था न ! पहुँचा विलायत, वहाँ उसने बनवाया रबड़ का एक बहुत बड़ा तंबू और जहाज़ पर तंबू लदवाकर चल दिया हिंदुस्तान। कलकत्ते में उसने वह तंबू लगवा दिया। वह तंबू कितना ऊँचा था, इसका अंदाज़ आप नहीं लगा सकते। उस तंबू का रंग नीला था। तो जनाब वह तंबू लगा कलकत्ते में, और विलायत से पीपे-पर-पीपे लद-लद कर आने लगे। उन पीपों में वेसलीन की जगह भरा था एक-एक अंग्रेज़ जवान, मय बंदूक और तलवार के। सब पीपे तंबू के नीचे रखवा दिए गए। जैसे-जैसे पीपे ज़मीन घेरने लगे, वैसे-वैसे तंबू को बढ़ा-बढ़ाकर ज़मीन घेर दी गई। तंबू तो रबड़ का था न, जितना बढ़ाया, बढ़ गया। अब जनाब तंबू पहुँचा प्लासी। तुम लोगों ने पढ़ा होगा कि प्लासी का युद्ध हुआ था। अरे सब झूठ है। असल में तंबू बढ़ते-बढ़ते प्लासी पहुँचा था, उस वक्त मुगल बादशाह का हरकारा

दौड़ा था दिल्ली। बस यह कह दिया गया कि प्लासी की लड़ाई हुई। जी हाँ, उस वक्त दिल्ली में शहंशाह शाहजहाँ की तीसरी या चौथी पीढ़ी सल्तनत कर रही थी। हरकारा जब दिल्ली पहुँचा उस वक्त बादशाह सलामत की सवारी निकल रही थी। हरकारा घबराया हुआ था। वह इन फिरंगियों की चालों से हैरान था। उसने मौका देखा न माहौल, वहीं सड़क पर खड़े होकर उसने चिल्लाकर कहा "जहाँपनाह, गज़ब हो गया। ये बदतमीज़ फिरंगी अपना तंबू प्लासी तक खींच लाए हैं और चूँकि कलकत्ते से प्लासी तक की ज़मीन तंबू के नीचे आ गई है, इसलिए इन फिरंगियों ने उस ज़मीन पर कब्ज़ा कर लिया है। जो इनको मना किया तो इन बदतमीज़ों ने शाही फ़रमान दिखा दिया।" बादशाह सलामत की सवारी रुक गई थी। उन्हें बुरा लगा। उन्होंने हरकारे से कहा "म्याँ हरकारे, मैं कर ही क्या सकता हूँ। जहाँ तक फिरंगियों का तंबू घिर जाए, वहाँ तक की जगह उनकी हो गई, हमारे बुज़ुर्ग यह कह गए हैं।" बेचारा हरकारा अपना-सा मुँह लेकर वापस आ गया।

"हरकारा लौटा, और इन फिरंगियों का तंबू बढ़ा। अभी तक तो आते थे पीपों में आदमी, अब आने लगा तरह-तरह का सामान। हिंदुस्तान का व्यापार फिरंगियों ने अपने हाथ में ले लिया। तंबू बढ़ता ही रहा और पहुँच गया बक्सर। इधर तंबू बढ़ा और उधर लोगों की घबराहट बढ़ी। यह जो किताबों में लिखा है कि बक्सर की लड़ाई हुई, यह गलत है भाई, जब तंबू बक्सर पहुँचा, तो फिर हरकारा दौड़ा।"

"अब ज़रा बादशाह सलामत की बात सुनिए। वह जनाब दीवान खास में तशरीफ़ रख रहे थे। उनके सामने सैकड़ों, बल्कि हज़ारों मुसाहिब बैठे थे। बादशाह सलामत हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे – सामने एक साहब जो शायद शायर थे, कुछ गा-गाकर पढ़ रहे थे और कुछ मुसाहिब गला फाड़-फाड़कर 'वाह-वाह' चिल्ला रहे थे। कुछ लोग तीतर और बटेर लड़ा रहे थे। हरकारा जो पहुँचा तो यह सब बंद हो गया। बादशाह सलामत ने पूछा – "म्याँ हरकारे, क्या हुआ–इतना घबराए हुए क्यों हो?" हाँफते हुए हरकारे ने कहा – "जहाँपनाह इन बदज़ात फिरंगियों ने अंधेर मचा रखा है। वह अपना तंबू बक्सर खींच लाए।" बादशाह सलामत को बड़ा

ताज्जुब हुआ। उन्होंने अपने मुसाहिबों से पूछा – "म्याँ, हरकारा कहता है कि फिरंगी अपना तंबू कलकत्ते से बक्सर तक खींच लाए। यह कैसे मुमकिन है?" इस पर एक मुसाहिब ने कहा – "जहाँपनाह, ये फिरंगी जादू जानते हैं, जादू !" दूसरे ने कहा –"जहाँपनाह, इन फिरंगियों ने जिन्नात पाल रक्खे हैं – जिन्नात सब कुछ कर सकते हैं।" बादशाह सलामत की समझ में कुछ आया नहीं। उन्होंने हरकारे से कहा – "म्याँ हरकारे, तुम बतलाओ यह तंबू किस तरह बढ़ आया।" हरकारे ने समझाया कि तंबू रबड़ का है। इस पर बादशाह सलामत बड़े खुश हुए। उन्होंने कहा – "ये फिरंगी भी बड़े चालाक हैं, पूरे अक्ल के पुतले हैं।" इस पर सब मुसाहिबों ने एक स्वर में कहा – "इसमें क्या शक है, जहाँपनाह बजा फ़रमाते हैं।" बादशाह सलामत मुसकराए – "अरे भाई, किसी चोबदार को भेजो, जो इन फिरंगियों के सरदार को बुला लाए। मैं उसे खिलअत दूँगा।" सब मुसाहिब कह उठे – "वल्लाह ! जहाँपनाह एक ही दरियादिल हैं इस फिरंगी सरदार को ज़रूर खिलअत देनी चाहिए।" हरकारा घबड़ाया। वह आया था शिकायत करने, यहाँ बादशाह सलामत फिरंगी सरदार को खिलअत देने पर आमादा थे। वह चिल्ला उठा – "जहाँपनाह ! इन फिरंगियों ने जहाँपनाह की सल्तनत का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने तंबू के नीचे करके उस पर कब्ज़ा कर लिया है। जहाँपनाह, ये फिरंगी जहाँपनाह की सल्तनत छीनने पर आमादा दिखाई देते हैं।" मुसाहिब चिल्ला उठे – "ऐ, ऐसा गज़ब।" बादशाह सलामत की मुसकराहट गायब हो गई। थोड़ी देर तक सोचकर उन्होंने कहा – "मैं क्या कर सकता हूँ? हमारे बुज़ुर्ग इन फिरंगियों को उतनी जगह दे गए हैं, जितनी तंबू के नीचे आ सके। भला मैं कर ही क्या सकता हूँ, फिरंगी सरदार को खिलअत न दूँगा?" इतना कहकर बादशाह सलामत फिरंगियों की चालाकी अपनी बेगमात से बतलाने के लिए हरम के अंदर चले गए। हरकारा बेचारा चुपचाप लौट आया।"

"जनाब ! उस तंबू ने बढ़ना जारी रक्खा। एक दिन क्या देखते हैं कि विश्वनाथपुरी काशी के ऊपर वह तंबू तन गया। अब तो लोगों में भगदड़ मच गई। उन दिनों राजा चेतसिंह बनारस की देखभाल करते थे। उन्होंने उसी वक्त बादशाह सलामत के पास हरकारा दौड़ाया। वह दीवानेखास में हाज़िर किया गया। हरकारे ने

बादशाह सलामत से अर्ज़ की कि वह तंबू बनारस पहुँच गया है, और तेज़ी के साथ दिल्ली की तरफ़ आ रहा है। बादशाह सलामत चौंक उठे। उन्होंने हरकारे से कहा – "तो म्याँ हरकारे, तुम्हीं बतलाओ, क्या किया जाए?" वहाँ बैठे हुए दो-एक उमराओं ने कहा – "जहाँपनाह, एक बड़ी फौज़ भेजकर इन फिरंगियों का तंबू छोटा करवा दिया जाए और कलकत्ते भेज दिया जाए। हम लोग जाकर लड़ने को तैयार हैं। जहाँपनाह का हुक्म भर हो जाए। इस तंबू की क्या हकीकत है, एक मर्तबा आसमान को भी छोटा कर दें।" बादशाह सलामत ने कुछ सोचा, फिर उन्होंने कहा – "क्या बतलाऊँ, हमारे बुज़ुर्ग शहंशाह शाहजहाँ इन फिरंगियों को तंबू के नीचे जितनी जगह आ जाए, वह बख्श गए हैं। बख्शीशनामा की रूह से हम लोग कुछ नहीं कर सकते। आप जानते हैं, हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं। एक दफा जो ज़बान दे दी वह दे दी। तंबू का छोटा कराना तो गैरमुमकिन है। हाँ, कोई ऐसी हिकमत निकाली जाए, जिससे ये फिरंगी अपना तंबू आगे न बढ़ा सकें। इसके लिए दरबारे आम किया जाए और यह मसला वहाँ पेश हो।"

"इधर दिल्ली में तो यह बातचीत हो रही थी और उधर इन फिरंगियों का तंबू इलाहाबाद, इटावा ढँकता हुआ आगरे पहुँचा। दूसरा हरकारा दौड़ा। उसने कहा – "जहाँपनाह, वह तंबू आगरे तक बढ़ आया है। अगर अब भी कुछ नहीं किया जाता, तो ये फिरंगी दिल्ली पर भी अपना तंबू तान कर कब्ज़ा कर लेंगे।" बादशाह सलामत घबराए, दरबारे आम किया गया। सब अमीर-उमरा इकट्ठा हो गए तो बादशाह सलामत ने कहा – "आज हमारे सामने एक अहम मसला पेश है। आप लोग जानते हैं कि हमारे बुज़ुर्ग शहंशाह शाहजहाँ ने फिरंगियों को इतनी ज़मीन बख्श दी थी, जितनी उनके तंबू के नीचे आ सके। इन्होंने अपना तंबू कलकत्ते में लगवाया था; लेकिन वह तंबू है रबड़ का, और धीरे-धीरे ये लोग तंबू आगरे तक खींच लाए। हमारे बुज़ुर्गों से जब यह कहा गया, तब उन्होंने कुछ करना मुनासिब न समझा; क्योंकि शहंशाह शाहजहाँ अपना कौल हार चुके हैं। हम लोग अमीर तैमूर की औलाद हैं और अपने कौल के पक्के हैं। अब आप लोग बतलाइए, क्या किया जाए।" अमीरों और मनसबदारों ने कहा "हमें इन फिरंगियों से लड़ना चाहिए और इनको सज़ा देनी

चाहिए। इनका तंबू छोटा करवाकर कलकत्ते भिजवा देना चाहिए।" बादशाह सलामत ने कहा –"लेकिन हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारा कौल टूटता है।" इसी समय तीसरा हरकारा हाँफता हुआ बिना इत्तला कराए ही दरबार में घुस आया। उसने कहा – "जहाँपनाह, वह तंबू दिल्ली पहुँच गया। वह देखिए, किले तक आ पहुँचा।" सब लोगों ने देखा। वास्तव में हज़ारों गोरे खाकी वरदी पहने और हथियारों से लैस बाजा बजाते हुए तंबू को किले की तरफ़ खींचते हुए आ रहे थे। उस वक्त बादशाह सलामत उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा – "हमने तै कर लिया। हम अमीर तैमूर की औलाद हैं। हमारे बुज़ुर्गों ने जो कुछ कह दिया, वही होगा? उन्होंने तंबू के नीचे की जगह फिरंगियों को बख्श दी थी। अब अगर दिल्ली भी उस तंबू के नीचे आ रही है, तो आए! मुगल सल्तनत जाती है, तो जाए, लेकिन दुनिया यह देख ले कि अमीर तैमूर की औलाद हमेशा अपने कौल की पक्की है।" – इतना कह बादशाह सलामत मय अपने अमीर-उमरावों के दिल्ली के बाहर हो गए और दिल्ली पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो गया। अब आप लोग देख सकते हैं, इस कलियुग में भी "मुगलों ने अपनी सल्तनत बख्श दी।"

हम सब लोग थोड़ी देर तक चुप रहे। इसके बाद मैंने कहा – "हीरो जी, एक प्याला चाय और पियो।"

हीरो जी बोल उठे– "इतनी अच्छी कहानी सुनाने के बाद भी एक प्याला चाय !"

बोध-प्रश्न

1. लोगों की यह धारणा क्यों थी कि हीरो जी पहले जन्म में विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक अवश्य रहे होंगे?
2. लेखक दानवराज बलि के उदाहरण से किस ओर संकेत कर रहा है?
3. अंग्रेज़ को कलकत्ता में तंबू लगाने की अनुमति बादशाह शाहजहाँ ने क्यों दी?
4. हीरो जी के अनुसार अंग्रेज़ों ने भारत में अपना राज्य-विस्तार कैसे किया?

5. प्लासी और बक्सर के युद्ध के बारे में हीरो जी की व्याख्या ऐतिहासिक तथ्यों से किस प्रकार भिन्न है?
6. तंबू के दिल्ली पहुँचने पर बादशाह सलामत ने क्या निर्णय किया?
7. अपनी सल्तनत छिनती देखकर भी बादशाह सलामत ने कोई कदम क्यों नहीं उठाया? इससे अंतिम मुगल बादशाहों की क्या तसवीर उभरती है?
8. इस कहानी के माध्यम से लेखक द्वारा किए गए व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।

6 समानांतर सरल रेखाएँ

विभूति पटनायक



अपनी उन्नति से देश की उन्नति होगी, यह बात नारायण बाबू ने कभी नहीं मानी। आज भी वे अपनी बात पर अटल हैं, अचल हैं। मगर उनके खून से पैदा होकर भी सनातन उनके आदर्श की ज़रा भी परवाह नहीं करता। बाप-बेटे दोनों समानांतर सरल रेखाओं की तरह रुचि, आदर्श, जीवन-यापन के तौर-तरीके किसी में भी नहीं मिलते। पर इस सनातन के प्रति पुत्र-स्नेह ने उस दिन उनके देश-प्रेम के स्थिर पात्र को हिला कर रख दिया।

सन 1942 के दिनों की बात है। महात्माजी तथा स्वतंत्रता आंदोलन के अन्य नेता गिरफ़्तार हो चुके थे। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध जन-चेतना को जगाने का व्रत लेकर वे भूमिगत हो चुके थे और छद्मवेश में घूमते फिर रहे थे, उड़ीसा के एक छोर से दूसरे छोर तक। उन पर अंग्रेज़ सरकार ने हज़ार रुपए के इनाम की घोषणा कर रखी थी।

घर पर अकेली पत्नी सौदामिनी और दो वर्ष का सनातन। पुलिस बार-बार आकर सौदामिनी से पूछताछ कर जाती। पर इन दो-तीन महीनों में आधी रात में घंटे-दो-घंटे के लिए एक-दो बार ही वे आए। स्त्री और बेटे को देखकर, दो बोल हिम्मत और सांत्वना के देकर, चले गए।

उस दिन भी इसीलिए घर आए थे आधी रात को। कुल घंटेभर के लिए। पर वहाँ जाकर देखा तो सनातन बुखार में बेहाल। सौदामिनी ने छलछलाए नेत्रों से

कहा, "तवे-सी तपती इसकी देह छोड़ कर कैसे जाओगे? रात बीतती तो डॉक्टर या वैद्य को दिखा देते, अब इस रात में क्या करूँ? मुझे बहुत डर लगता..."

आकाश में मेघ घिर रहे थे। परत-दर-परत अँधेरा सारे परिवेश को आशंका और भय से व्यग्र किए दे रहा था। कोई आवारा कुत्ता भौंक रहा था रात के सूने रास्ते पर। ऐसे में अकेली सौदामिनी के पास बीमार बच्चे को छोड़ कर देश-प्रेम की जलती आग में कूदने की हिम्मत नहीं हो रही थी। सनातन अपनी नन्ही हथेलियों में नारायण बाबू का हाथ पकड़े था। बुखार तेज़ था। उसके साथ पुत्र-स्नेह की ऊष्मा मिल गई। आधे घंटे में वह जगह छोड़ अन्यत्र चले जाना था। वे निर्देश भूल गए। सनातन को गोद में लेकर रात भर बैठे रहे। सुबह पुलिस की व्हिसल सुनकर दूसरी जगह जाने की बात याद आई। मगर अब समय न था। मकान पुलिस के घेरे में था। पकड़े गए। चार वर्ष जेल के अँधेरे में सड़ना पड़ा।

महात्मा गांधी के आह्वान पर नौकरी छोड़ दी। स्वतंत्रता की लड़ाई में कूद पड़े। अपने जीवन में स्वतंत्रता देखेंगे या जेल से छूट बेटे-पोतों, बहू-नातियों को लेकर घर बसाएँगे, यह सपने में भी नहीं सोचा। मगर एक बात मन में ज़रूर थी कि जेल में यदि पहली महारणा की तरह बीमार पड़ कर बिना इलाज के मर गया, या फिर गोकुल भोल की तरह जेल वालों के दुर्व्यवहार के प्रतिवाद में आमरण अनशन कर शहीद हो गया तो सनातन ज़रूर ब्रिटिश सरकार से लड़ेगा...उनके जीवन का आदर्श उनके खून से बनी संतान को रास्ता दिखाएगा ...

मगर हो गया सब उलट-पलट।

देश स्वतंत्र हुआ। पत्नी के चल बसने के बाद उन्होंने बड़ी मुश्किल से सनातन को वकालत पढ़ाई। उसे स्वाधीनचेता,सच्चा आदमी बनाने की पुरज़ोर कोशिश की, मगर वह अलग ही राह चल पड़ा। किसी भी तरह पैसे कमा कर अपना घर चलाना, अपनी उन्नति में ही देश की उन्नति है यह गलतफ़हमी लेकर वह स्वाधीनोत्तर भारत का नकली क्रांतिकारी बन बैठा। अपने श्रम से नहीं, श्रमिकों के कंधे चढ़ कर बड़ा दिखने की चेष्टा करने लगा।

शराब की दुकान के आगे पिकेटिंग कर दो-दो बार जेल गए थे नारायण दास। उन्हीं का लड़का उनके सामने औरों के साथ शराब पीने लगा। अंग्रेज़ी की जगह स्वदेशी बेसिक तालीम के सपने देखे थे उन्होंने, मगर उनके दोनों पोते-पोती अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ रहे हैं। सनातन की पत्नी मधुमिता खादी देखते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगती है। पति की कमाई घर चलाने में पूरी नहीं पड़ी, सो वह भी एक दिन मास्टरनी बन गई।

महात्मा गांधी की हत्या के बाद भारत में ऐसा कुछ हो-सकता है, नारायण दास ने थोड़ा-बहुत अनुमान कर लिया था; मगर देखते-ही-देखते उनकी आँखों के सामने भोग ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन जाएगा, जबकि त्याग की बातें सिर्फ़ औरों को उपदेश देने के लिए ही रह जाएँगी, यह सोचने में भी उन्हें काफ़ी तकलीफ़ हो रही थी। तभी अनेक स्वतंत्रता सेनानी आज़ादी के बाद देश की सत्ता हथियाने के लिए चुनावी लड़ाई में उतरे, मगर वे उससे अलग ही रहे। बगीचे में पौधे उगाना, सूत कातना, अखबार और किताब पढ़ना – इसी में निमग्न होकर रह गए।

अचानक एक दिन सनातन आकर कहने लगा,“बापू! हमारी यूनियन के एक लेबर लीडर चार दिन से आमरण अनशन पर हैं। सरकार हमारी एक भी माँग स्वीकार करने को तैयार नहीं। उधर उनका स्वास्थ्य गिर गया है। एक भी माँग पूरी न होने पर श्रमिकों की आस्था हमारी यूनियन में नहीं रह जाएगी। वे दूसरी यूनियन में चले जाएँगे... आप ज़रा मंत्री से कह देते तो..चालीस में से कम-से-कम एक माँग ही कोई सरकार मान लेती तो..अनशनकारी नेता की हालत खराब हो गई..”

फल का रस पीकर अनशन तोड़ने का लक्ष्य लेकर जो अनशन शुरू करते हैं, उनके लिए नारायण दास के मन में अकुंठ घृणा है। सनातन की बात सुनकर उनके चेहरे पर वही घृणा उभर आई।

पूछा “मैं कौन होता हूँ? मंत्री मेरी बात क्यों रखेंगे?”

सनातन ने याद करा दिया,"मंत्री भी स्वतंत्रता सेनानी थे। एक साथ जेल में थे। देश के लिए तीन बार सात साल की जेल भोगी है। आपकी बात ज़रूर रखेंगे।"

बेटे की बात सुन गुस्से से लाल हो गए नारायण दास। चीखते-से कहने लगे, "अपने फ़ायदे के लिए जेल गया था? देश की सेवा की, उसकी क्या मजूरी माँगी जाती है? पता है – गोकुल भोल आमरण अनशन कर शहीद हो गया जेल में, उसके जीवन का मूल्य चुकाया किसी ने? क्षुद्र स्वार्थ के लिए और अनशन तोड़ने का दिन तय कर जो लोग आमरण अनशन करते हैं, उन्हें क्या सत्याग्रही कहा जाता है? ...बोलो.. चुप क्यों हो गए?"

सनातन बाहर से चुपचाप दिख रहा था, मगर भीतर-ही-भीतर क्रोध से थर्रा रहा था। उसे लग रहा था – यह आदमी उसका बाप नहीं, कोई शत्रु है, प्रतिद्‌वंद्‌वी लेबर यूनियन का कोई दलाल है। उसके नेतृत्व की असफलता सिद्‌ध करने के लिए ही वह मंत्री से कुछ नहीं कहना चाहता।

सनातन चला आया।

उसकी चाल से नारायण दास को अनुमान हो गया था कि बेटे के साथ संबंध बस टूट गया है यहीं।

आजकल अपने बेटे, बहू,संगी, साथी किसी को नहीं समझ पाते नारायण दास। मानो सब किसी 'सुख' नामक तोते को किसी तरह अपने पिंजड़े में भर लेने के लिए दौड़-धूप में लगे हैं। क्या न्याय है, क्या अन्याय, यह समझने की उन्हें फ़ुरसत कहाँ? इन अपने-अपने मतलब में डूबे लोगों के बीच उन्हें बहुत अकेला-अकेला लगता है। निहायत अपने लोग भी बेगाने-पराए जैसे दिखते हैं। उन्हें लगता है – पहली महारणा या गोकुल भोल की तरह जेल में शहीद हो जाते तो बच जाते। महात्मा गांधी भी आततायी की गोली से मर कर उबर गए और मैं जी रहा हूँ सिर्फ़ मरण-वेदना सहने के लिए !

जेल में सुबह उठते ही और रात में सोने के पहले 'इंकलाब ज़िंदाबाद' का नारा लगाना गोकुल भोल का रोज़ का अभ्यास था। जेलर ने इस पर गुस्सा होकर

उसका राशन आधा कर दिया। इस अन्याय के खिलाफ़ गोकुल ने कर दिया आमरण अनशन। इक्कीसवें दिन उपवास में ही 'इंकलाब ज़िंदाबाद' का नारा लगा कर उसने आँखें मूँद ली, शहीद हो गया। अगले दिन जेल के चार सौ इक्यानबे लोगों की ज़बान पर 'इंकलाब ज़िंदाबाद' गूँज रहा था। पता नहीं वह आवाज़ जेल की मोटी चारदीवारी लाँघ बाहर की दुनिया के कानों तक पहुँची या नहीं, मगर जेल सुपरिटेंडेंट की छाती दब गई। अगर गोकुल का रास्ता पकड़ सब बंदी अनशन पर उतर आएँ, शहीद हो जाएँ, तब तो परिणाम भयंकर होगा। गोरा सुपरिटेंडेंट अच्छी तरह समझ गया था कि इस सत्याग्रह का क्या परिणाम हो सकता है ! अतः गोकुल के बाद कैदियों की नारेबाज़ी पर कोई ध्यान नहीं देता। छूट मिल गई ! मगर यह बात क्या जान सका था गोकुल?

जेल में गोकुल के आत्मत्याग के कारण नारे लगाने की स्वतंत्रता जिस दिन मिली थी, नारायण दास खुद लेटे-लेटे वैसी ही मृत्यु का सपना देख रहे थे। देश के लिए शहीद होने के विचार में ही एक तरह की पवित्र तृप्ति और स्निग्ध आनंद से मन भर जाता है – यह बात उस दिन पहली बार अनुभव कर रहे थे। मगर अब तो लोग बेमतलब लड़ाई-झगड़ा कर छुरेबाज़ी कर बैठते हैं, सड़क पर दुर्घटना में मर जाते हैं, मगर देश या जाति के लिए मरने की बात सोचते ही चारों ओर अँधेरा-अँधेरा नज़र आता है ! यह सोच कर मन में दुख भर जाता है। तब उन्हें छियासठ वर्ष का जीवन एक बड़ा बोझ-सा लगने लगता है।

उस दिन आकर मधुमिता बोली, "पिताजी, मेरा ट्रांसफ़र कोरापुट के पहाड़ी, जंगली इलाके में हो गया है। ज़रा मंत्री के आगे मुँह खोल देते, कैंसल हो जाता!"

नारायण दास ने विस्मय से कहा, "बहू ! शिक्षक बनी हो, बदली तो होगी ही। मैं मंत्री से क्या कह सकता हूँ? वैसे भी कोरापुट तो बहुत अच्छी जगह है!"

मधुमिता खीझ पड़ी, "जो आज़ादी के लिए जेल गए थे, आज कहाँ-से-कहाँ पहुँच गए हैं ! क्या कुछ नहीं मिला उन्हें ! अपने बेटे-पोतों के लिए बहुत कुछ कर दिया...और आप ! न खुद कुछ करेंगे, न हमें चैन से जीने देंगे?"

नारायण दास यह सुनकर तैश में आ गए। बोले, "आज़ादी के लिए जेल गया था तो आज़ादी के बाद उससे फ़ायदा उठाऊँ? मुनाफ़ा लूँ? छिः छिः ! जिनके नेतृत्व में आज़ादी मिली, वे महात्मा अपने लिए क्या कुछ चाहते थे? कोई पद-पदवी ली? बोलो, जवाब दो!"

मधुमिता चुप नहीं रही। ससुर को सुना दिया, "रोज़ एक गिलास दूध के लिए कहा था डॉक्टर बाबू ने। मैं नौकरी छोड़ दूँगी तो दूध वाले के पैसे क्या आज़ादी चुकाने आएगी? मैं बच्चों को छोड़ कोरापुट नहीं जा सकती।"

नारायण दास मांस-मछली नहीं खाते। अतः उसी का ताना मारा। दूधवाला रोज़ आधा किलो दूध उनके लिए दिया करता। अगले दिन से खुद ही दूध छोड़ दिया। बहू या बेटे किसी ने उस बात का ज़िक्र तक नहीं किया। बेटे से संपर्क पहले ही टूट चुका था। उस घटना के बाद बहू ने भी ममता का बंधन शिथिल कर लिया।

अपने परिवार में नारायण दास बिलकुल निःसंग, अनावश्यक और फालतू चीज़ की तरह उपेक्षित पड़े रहे। अपने ही घर में वे पराए बन गए ! तबीयत बिगड़ने पर वे किसी से कुछ नहीं कहते। समझ गए कि इस युग में पैसा ही सब कुछ है। जिसमें पैसा कमाने की कला नहीं, उसके जीवन का कोई मूल्य नहीं। पैसे न होने पर साधु-सच्चे आदमी को यहाँ कोई नहीं पूछता। कमाऊ न होने पर परिवार में भी कोई नहीं पूछता।

बेटा, बहू, पोता, पोती किसी का इसमें दोष नहीं। उन्होंने अपनी आँख से देखा है – जिन्होंने आज़ादी के लिए ज़रा भी त्याग किया है, उसके बल पर बाद में काफ़ी कुछ बटोरा है। मकान से लेकर पद-पदवी तक अनेक चीज़ों के लिए श्रम किया है, प्राप्त भी किया है। उस दृष्टि से स्वयं वे नालायक हैं, असफल हैं। अतीत के त्याग को पूँजी बना कर भोग की सामग्री जुटाने में वे कभी सफल नहीं हो पाए।

कई बार स्वयं से पूछा है क्या इसलिए दरोगा की नौकरी छोड़ी थी कि आज़ादी के बाद मौज उड़ाएँगे? इसी लोभ से गांधीजी के असहयोग आंदोलन में कूदे...दुख सहे? क्या हो गया उनके सपनों के भारत को? कहाँ गया त्याग, देशप्रेम?

उनकी आँखें आँसुओं से धुँधला गईं। जीने का लोभ फीका होता जा रहा है। पहली महारणा, गोकुल भोल जैसे गांधीवादी सैकड़ों लोग उनकी आँखों के आगे उभर रहे हैं। मन-ही-मन उनसे ईर्ष्या हो आती है। स्वागत में कहते 'आप सब भाग्यवान हैं, देश का अधःपतन देखने से पहले ही चले गए ! देशवासियों को प्रेम ही देते रहे। मेरी तरह उनके लिए संताप का दुर्भाग्य कभी नहीं आया।'

मधुमिता को कोरापुट में अखबार पढ़कर पता चला कि ससुर बीमार हैं। अखबार के अंदर कहीं छोटी-सी खबर छपी थी छोटे-छोटे अक्षरों में 'नारायण दास अस्वस्थ हैं।' पढ़कर मधुमिता चौंक उठी। छुट्टी लेकर वह कुछ फल, दवा आदि सहित कटक आ पहुँची।

पत्नी को अचानक देख सनातन चौंक उठा। पूछा, "छुट्टी तो नहीं थी। अचानक कैसे?"

मधुमिता ने संक्षेप में बताया, "अखबार में पिताजी की बीमारी की बात पढ़ी। मैं समझ गई, हालत नाज़ुक है, वरना अखबार में नहीं छपती। कैसे हैं वे?"

सनातन ने निर्लिप्त भाव से कहा, "यह बीमारी कोई अचानक हुई है? कई दिन से वे खाट पकड़े हैं। फिर वैसे भी उमर हो गई। घिसटने से बेहतर चले जाना होगा। फालतू में ज़रा-सी बात पर छुट्टियाँ खर्च कर आई !"

मधुमिता के चेहरे पर रंग नहीं था। दबे स्वर में कहा, "क्या कह रहे हैं! देश के वे गौरव हैं। केंद्रीय सरकार ने सात वर्ष जेल भोगने पर उन्हें पाँच सौ रुपए भत्ता मंजूर किया है...देखिए, यह पत्र आया है दिल्ली से।"

पाँच सौ मासिक भत्ता !

अब सनातन भी चौंक उठा। बहुत दिन पहले उसी ने जबरन बापू की इच्छा के विरुद्ध उनके दस्तखत लेकर एक दरख्वास्त दिल्ली भेज दी थी। मगर वह दरख्वास्त बिना सिफ़ारिश के मंजूर कैसे हो गई!

मधुमिता ने कागज़ दिखाया। चार-पाँच दिन पहले उसी की मार्फ़त पत्र आया है। केंद्रीय सरकार ने खुशी से स्वाधीनता सेनानी नारायण दास को जीवन-भर के लिए पाँच सौ रुपए का भत्ता मंजूर किया है।

उस कागज़ पर मधुमिता और सनातन की चारों आँखें खुशी में भर कर नाच रही हैं। मानों पहली बार यह कागज़ पढ़कर वे जान पाए हैं कि नारायण दास सचमुच स्वाधीनता सेनानी थे! देश के लिए सात वर्ष जेल गए थे!

मधुमिता ने कहा, "छिः छिः...जो हो गया छोड़ो। अब देर न करो। जल्दी डॉक्टर बुलाओ। हर हालत में पिताजी को बचाना होगा। वे देश के गौरव हैं, जाति के आदर्श हैं। जाओ।"

सनातन तेज़ी से उठ खड़ा हुआ। डॉक्टर को तुरंत बुलाना है। देर न हो जाए !

नारायण दास आँखें मूँदे बिस्तर पर लेटे हैं। दर्द से सारी देह बेचैन है। साँस लेने में भी कष्ट हो रहा है। अचानक किसी ने पाँव सहलाए। पूछा, "कौन, गोकुल?"

"नहीं, पिताजी! मिता हूँ ! आपकी तबियत नरम जानकर कोरापुट से चली आई।"

बहू की ही आवाज़ है। मगर बहू पाँव सहला रही है! उन्हें विश्वास नहीं हुआ।

जेल के दिनों में बीमार होने पर एक और राजबंदी उनकी सेवा करता था। गोकुल मन लगाकर सारे काम कर देता। तेल लगा देता तलवे में, फिर दबाकर उँगलियाँ चटखा देता। अब कभी पाँव पिराने या हाथ मे दर्द होने पर गोकुल याद आ जाता है। मरते समय का उसका चेहरा झलक उठता है। अतः पाँव किसी ने छुए कि गोकुल समझ वे चौंक उठे।

मधुमिता ने कहा, "पिताजी ! मैं आ गई हूँ। आप ठीक हो जाएँगे। उन्हें डॉक्टर बुलाने भेजा है। आप के स्वस्थ न होने तक मैं कोरापुट नहीं जाऊँगी।"

तो यह सपना नहीं था। नारायण दास ने आँखें खोल क्षीण स्वर में पूछा, "बहू है !"

सिरहाने तक आने को कहा। मधुमिता की आँखें पता नहीं, क्या सोच कर छलछला आई हैं। कहा, "पिताजी! डर की कोई बात नहीं। डॉक्टर बुलाने गए हैं वे। दो-चार दिन में स्वस्थ हो जाएँगे।"

नारायण दास ने स्थितप्रज्ञ की तरह कहा, "नहीं बेटी ! मरण से डर नहीं है। सचमुच, देश आज़ाद होने के बाद मेरी ज़रूरत पूरी हो गई है।"

मधुमिता सँभाल नहीं पाई। कहने लगी, "बाबा ! पिताजी ! ऐसा न कहें। देश गुमराह हो रहा है। अभी आप को जीना होगा। बहुत दिन रहना होगा। सरकार ने पाँच सौ रुपए का मासिक भत्ता मंजूर किया है ! ... मैं आपकी सेवा करूँगी..."

बहू की बात सुनकर नारायण दास की छाती में हूक-सी उठी। दर्द से भर गए। चेहरे पर हलकी-सी मुसकान लाते हुए कहा, "बेटी ! सरकारी भत्ते की तरह तेरा स्नेह मुझे बहुत देर से मिला। मैं उसका उपभोग कर नहीं पाया... "

मधुमिता ने देखा, ससुर के चेहरे का रंग अचानक बदल रहा है। आँखें मुँद गई हैं। चेहरा सचमुच किसी शहीद की तरह है, उन शहीदों की तरह जिनके चेहरे मधुमिता ने सिर्फ़ किताब के पन्नों में देखे हैं।

बोध-प्रश्न

1. किस घटना ने नारायण बाबू के देश-प्रेम के स्थिर पात्र को हिलाकर रख दिया?
2. नारायण बाबू ने अपने पुत्र सनातन को लेकर क्या स्वप्न सँजोए थे? वे स्वप्न चूर-चूर क्यों हो गए?
3. लेखक ने सनातन को स्वाधीनोत्तर भारत का नकली क्रांतिकारी क्यों कहा है?
4. नारायण बाबू को यह कब लगा कि बेटे के साथ अब संबंध टूट ही गया है?
5. अपने ही घर में नारायण बाबू किस तरह पराए हो गए?
6. 'अतीत के त्याग को पूँजी बनाकर भोग की पूँजी जुटाने' से क्या आशय है?
7. नारायण बाबू को पहली महारणा, गोकुल भोल जैसे सैंकड़ों लोगों से मन-ही-मन ईर्ष्या क्यों हो आती थी?
8. मधुमिता हर हालत में नारायण बाबू को क्यों बचाना चाहती थी?
9. लेखक ने नारायण बाबू और उनके पुत्र को समानांतर सरल रेखाएँ क्यों कहा है?
10. "सब किसी 'सुख' नामक तोते को किसी तरह पिंजड़े में भर लेने के लिए दौड़-धूप में लगे हैं। क्या न्याय है, क्या अन्याय, यह समझने की उन्हें फ़ुरसत कहाँ?" वर्तमान संदर्भ में इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

लेखक-परिचय

सियारामशरण गुप्त (1895-1963)

गांधीवादी विचारक लेखक। काव्य रचनाओं के साथ-साथ गद्य की विभिन्न विधाओं में रचनाएँ की हैं। गद्य कृतियाँ: पुण्य पर्व (नाटक), गोद, नारी, अंतिम आकांक्षा (उपन्यास), मानुषी (कहानी संग्रह) और झूठ-सच (निबंध संकलन)। काव्य कृतियाँ: विषाद, अनाथ, आर्द्रा, उन्मुक्त, मृण्मयी, गोपिका आदि।

सुभाष चंद्र बोस (1887-1945)

देश के शीर्षस्थ नेता। छात्रावस्था से ही मातृभूमि को स्वतंत्र कराने के लिए वे राजनीति में भाग लेने लगे। 1942 में नजरबंदी के दिनों में अंग्रेज़ों से आँख बचाकर देश से बाहर चले गए। सिंगापुर में उन्होंने आज़ाद हिंद फौज़ की स्थापना की और अंग्रेज़ी सेना से डटकर लोहा लिया।

सुभाष चंद्र बोस ने राजनीति के साथ-साथ पत्रकारिता के क्षेत्र में भी काम किया। वे दैनिक 'फारवर्ड' के संपादक रहे। वे एक अच्छे लेखक थे। उनकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं।

श्रीलाल शुक्ल (1925)

प्रशासनिक सेवा से निवृत्त। इन्होंने उपन्यासकार और व्यंग्यकार के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त की है। प्रमुख रचनाएँ हैं – सूनी घाटी का सूरज, अज्ञातवास, रागदरबारी, सीमाएँ टूटती हैं, मकान, आदमी का ज़हर, पहला पड़ाव (उपन्यास), अंगद का पाँव, यहाँ से वहाँ, उमराव नगर में कुछ दिन (व्यंग्य संग्रह)। 'रागदरबारी' उपन्यास के लिए 1969 में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से सम्मानित।

ऋता शुक्ल (1950)

संवेदनशील महिला लेखिका। मुख्यतः कहानीकार। 1977 में पहली कहानी 'आत्मदाह' प्रकाशित हुई। देश की विभिन्न प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में अनेक कहानियाँ प्रकाशित।

भगवतीचरण वर्मा (1903-1981)

कवि के रूप में साहित्यिक जीवन का प्रारंभ। बाद में कथा साहित्य में वे पूरी तरह से रम गए और इसमें उन्हें लोकप्रियता भी मिली। उनका पहला उपन्यास 'चित्रलेखा' कथावस्तु और उनकी विशिष्ट शैली के कारण बहुचर्चित हुआ। उनके प्रमुख उपन्यास हैं – टेढ़े-मेढ़े रास्ते, भूले-बिसरे चित्र, सीधी-सच्ची बातें, सबहि नचावत राम गोसाई।

विभूति पट्टनायक

प्रसिद्ध उड़िया कथाकार एवं शिक्षक, मानव की मूल संवेदनाओं के कुशल चितेरे। उल्लेखनीय रचनाएँ – श्रेष्ठ गल्प कलिकाल, राजकन्यार दुख, मन भुले नाहिं (कहानी संग्रह) तथा चपल छंपा, बधु निरूपमा, नायिकार नाम श्रावणी (उपन्यास)। उड़िया साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित। उड़िया त्रैमासिक पत्रिका 'गल्प' के संपादक।

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो० क० गांधी